॥ हरिः ॐ ॥

पूज्य श्रीमोटा

मौनमंदिर का मर्म

हरिः ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरि:ॐ ॥

मौनमंदिर का मर्म

पूज्य श्रीमोटा की मुक्तिदायक पावन-वाणी मौन-एकांत के साधकों के समक्ष

: संकलन :
डॉ. रमेश म. भट्ट

: अनुवादक :
रजनीभाई बर्मावाला

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

- **प्रकाशक : ट्रस्टीमंडल,**
  हरि:ॐ आश्रम, कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा,
  सुरत-३९५००५, दूरभाष : (०२६१) २७६५५६४, २७७१०४६
  Email : hariommota1@gmail.com
  Website : www.hariommota.org

© सर्वाधिकार - प्रकाशकाधीन

- प्रथम संस्करण : गुरुपूर्णिमा, वि.सं. २०७०

- प्रतियाँ : १०००

- पृष्ठ संख्या : ११२

- मूल्य : रु. २०/-

- प्राप्तिस्थान :
  (१) हरि:ॐ आश्रम, सुरत-३९५००५

  (२) हरि:ॐ आश्रम, नडियाद-३८७००१

- डिझाइनर : मयूर जानी, मो. ९४२८४०४४४३

- टाइपसेटिंग : **अर्थ कॉम्प्यूटर**
  २०३, मौर्य कोम्प्लेक्ष, सी.यु.शाह कॉलेज के सामने,
  इन्कमटैक्स, अहमदावाद-३८००१४,
  फोन : (०७९) २७५४३६९९ , मो. ९३२७०३६४१४

- मुद्रक :
  साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
  सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड, अहमदावाद-३८००२२
  फोनः (०७९) २५४६९१०१

॥ हरिःॐ ॥

संकलनकर्ता का निवेदन

पू. श्रीमोटा हरिःॐ आश्रम सुरत में ठहरते उस दौरान मौनएकांत के साधकों के समक्ष प्रवचन देते। मौनमंदिर के प्रवेशक और मौनमंदिर में से निकलते साधकों के समक्ष जो कुछ बोलते उसकी नोंध पर से यह पुस्तक तैयार हुई है। पू. श्रीमोटा की ये 'बातें' हैं। ऐसी बातों द्वारा पू. श्रीमोटा ने आध्यात्मिक जीवन की अनेक रहस्यमय बातें प्रगट की हैं। वे किसी भी श्रेयार्थी को प्रसन्न करे और प्रेरणा दे ऐसी है।

पू. श्रीमोटा के व्यक्तित्व का केन्द्र है–''भगवान नाम का स्मरण''। उस विषयकेन्द्र के अनुसार ही आपश्री सभी कुछ कहते हैं। दूसरा उतना ही महत्त्व का लक्ष्यबिंदु नामस्मरण का हेतु है। नामस्मरण का हेतु रागद्वेष फीके करने का है। पू.श्रीमोटा इस हेतु के प्रति सजग रहने के लिए बारबार कहा करते हैं। उसके पीछे मर्म रहा है। भगवान के नाम का रटन या स्मरण करने मात्र से ज्ञानतंतु मजबूत बनते हैं, यह तो उसका अनिवार्य परिणाम है, किन्तु; श्रेयार्थी समझपूर्वक स्वयं जिस हेतु से नामस्मरण करता है; उसके प्रति यदि लक्ष्य रखे तो रागद्वेष फीके करने के लिए भगवान का नामस्मरण अत्यंत कामयाब होता है।

इसके साथ ही दुगुना लाभ है। रागद्वेष फीके होने की भूमिका बनने से मन, बुद्धि और चित्त में नामस्मरण का उठाव फिर अनोखी रीति से होता है। हेतु की जाग्रति से होते जप से ऐसी भूमिका से होता नामस्मरण अंतःकरण की शुद्धि करने में अत्यंत वेगवान और गहरा बनता है। ऐसा अनुभव के लिए पू. श्रीमोटा प्रयोग करके देखने को कहते हैं। ऐसा प्रयोग स्वयं सिद्ध किया है। अतः

जो कोई उनके वचनबल पर श्रद्धा रखकर ऐसा प्रयोग का अभ्यास करने लगे तो जीवन में——व्यवहार में उसे अनुभव होता है कि रागद्वेष की पकड़ ढीली पड़ी है ।

पू. श्रीमोटा की रागद्वेष के विषय की बात में एक मर्म रहा है । आपश्रीने रागद्वेष 'को फीके करने' की बात कही है, रागद्वेष को निर्मूल करने की बात नहीं की है । रागद्वेष को जीतना कठिन है । वह काम आसान नहीं है, किन्तु जो रागद्वेषादि अनेक द्वन्द्वों से पर हुए ऐसे चेतननिष्ठ – आत्मनिष्ठ पुरुष के बचनबल से बहुत काम सिद्ध हो सकते हैं । रागद्वेष की पकड़ से हमारा जीवन दुःख, क्लेश, संताप, टकराव और वेदनाओं से भरा रहता है । रागद्वेष की पकड़ ढीली होती अनुभव कर सकें, तब तनिक-तनिक फीके पड़ने की भूमिका बनती है, ऐसा मान सकते हैं । पू.श्रीमोटा इन बातों के दौरान बार-बार कहते हैं वैसे ऐक्य और सद्भावपूर्ण बरताव से ही जीवन का विकास होता है । जब हमारे जीवन में बरतने का आये, उस पल में हमारे हृदय में, मन-बुद्धि में किस प्रकार का भाव बरतता है, उस पर से प्रत्येक को अपनी अवस्था का नाप निकालना है । आदत, गुत्थी, मान्यता, मताग्रह इत्यादि का खिंचाव कम हो ऐसे लक्षण स्पष्ट बरतने चाहिए । **पू.श्रीमोटा की यह एक बेजोड़ विशेषता है कि प्रभुमय जीवन की प्रत्येक भूमिका के लक्षण उन्होंने स्पष्ट अलग दिखा दिये हैं, जिससे प्रभुमय जीवन के लिए सज्ज हुआ कोई भी व्यक्ति असावध न रहे ।**

जीवन में ऐसे प्रकार के वर्तन की भूमिका के प्रति जागृत रहने के लिए हमें लगन लगे, तमन्ना प्रगट हो और प्रबल जिज्ञासा रहा करे यह आवश्यक है । इसके लिए आपश्रीने मौन-एकांत मंदिरों की रचना की है । और इस मौन-एकांत द्वारा आपश्रीने 'उत्तम सेवा'

की है, ऐसा उन्होंने कहा है । यहाँ 'सेवा' शब्द का सामान्य अर्थ नहीं लेना है, किन्तु आत्मानुभवी पुरुष की सूक्ष्म और गूढ़ क्रिया का संकेत करता यह शब्द है । क्योंकि मौनमंदिर यह केवल एकान्त की आवश्यकता पूर्ण करे ऐसा अंधेरा कमरा ही नहीं, किन्तु उसके वातावरण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु में पू. श्रीमोटा की भागवती प्रेमरूपा चेतना की सतत सक्रियता विद्यमान है । मौनमंदिर में प्रवेश करनेवाले साधक के हृदयस्थ प्रभुभाव के साथ वह चेतना जुड़ती है और उसे अपनी प्रकृति के जोश और इन्द्रियों की गति का स्पष्ट दर्शन कराती है । मौनमंदिर में रहा हुआ साधक विशेष प्रयत्न किए बिना इस प्रक्रिया में आ जाता है । यह पूज्यश्री की गूढ़ चेतनाशक्ति का प्रभाव है । इस तरह प्रगट परमात्मा, आच्छादित आत्मा का 'सेवन' अनुभव करता है । और चेतन पुरुष की ऐसी सेवन करने की गूढ़ क्रिया से जो जीवात्मा मौनमंदिर में है, उसमें से कुछ न कुछ 'नया जन्म होता' अनुभव में आता है । मौनमंदिर में श्रेयार्थी को ऐसे अद्भुत आंतरिक अनुभव होते हैं कि अकारण आनंद, उमंग, उत्साह के उछाल अनुभव में आते हैं, यह पू. श्रीमोटा जिसे 'सेवा' कहते हैं, ऐसी सूक्ष्म सेवन की गूढ़ क्रिया का परिणाम होता है ।

इसलिए आपश्री कहते हैं कि 'संसारव्यवहार में प्रारब्धयोग से जो कुछ मिलता है, उसके जीवन को भावना में ऊपर उठाने इस स्थान पर मिलने का हेतु है । इसके लिए गुरुमहाराज की कृपा से आश्रम बनाया है । मैं तुम्हारा संबंध चाहता हूँ सही, किन्तु तुम्हें तिलभर खिसकना न हो, या आपमें तनिक-सा भी फेरफार नहीं होने देना हो तो ऐसे संबंध की आवश्यकता नहीं है । इसकी अपेक्षा मेरा भगवान के साथ का संबंध अच्छा है, आपको रागद्वेष के गड्ढे

में पड़ा रहना हो तो मेरे साथ के संबंध का कोई अर्थ नहीं' । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पू. श्रीमोटा के साथ के संबंध से रागद्वेष के गड्ढे से निकलने के लिए संघर्ष करने की शक्ति प्रगट होती है।

इस हकीकत का अनुभव मौनमंदिर में होता है । अब पू. श्रीमोटा के साथ संबंध सूक्ष्म निमित्त द्वारा हो सकता है। अक्षरस्वरूप – अक्षरदेह वह उनके साथ के संबंध का उत्तम निमित्त है। आपश्री शब्दों द्वारा उसके पाठक के साथ जैसे प्रत्यक्ष बात करते हैं। ऐसे निमित्त द्वारा संबंध में आनेवाले जिज्ञासु-श्रेयार्थी पू. श्रीमोटा की चेतना का सूक्ष्म स्पर्श अनुभव करते हैं और उसका परिणाम जान सकते हैं। ऐसा स्पर्श का अनुभव करने का स्थान मौनमंदिर है।

मौनमंदिर में पू. श्रीमोटा की चेतना साधक के अंतःकरण की उसकी जैसी भूमिका हो, उस रीति से और उतने अनुपात में भावना की स्थिति में, ऊपर लाती है। इस प्रकार जो ऊर्ध्वभाव में साधक आता है, उसका कारण उसके अंतःकरण में एवं उसके सूक्ष्म शरीर में रहे हुए चक्रों को वह चेतनाशक्ति चीरती है । सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म चक्रों को चीरने की प्रक्रिया आपश्रीने समझाई है। ('चेतननिष्ठ का गूढ़ कार्य') । स्वयं सूक्ष्म चक्रों को चीरने की विद्या के जानकार हैं । 'उन चक्रों की विद्या का सूक्ष्म में व्यक्त और अव्यक्त भाव है। ऐसे अव्यक्त भाव की स्थिति में या अव्यक्त भाव से या शब्द से उस विद्या का जानकार अन्य को उसमें गति कराता है' ऐसा आपश्री ने स्पष्ट कहा है ।

सामान्य जीवात्मा में ऐसी गूढ़-सूक्ष्म क्रिया द्वारा पूज्यश्री ऊर्ध्व भावों की जागृति करा देते हैं । यह क्रिया विशेषतः मौनमंदिर में संभव होती है, क्योंकि साधक का अंतःकरण वहाँ कदाचित् ही अवरोधक होता है । पूज्यश्री के हृदय में प्रगट हुई प्रेमचेतना का यह कार्य उनको प्रारब्धयोग से मिले हुए और मौनएकान्त का आश्रय

लेकर जीवन को उन्मुखी भावना में प्रेरित करने आतुरता वाले जीवों में ऐसी अनेक गूढ़ क्रियाओं के रूप में होता है। ऐसी सूक्ष्म विधि द्वारा साधक में अधिक अनुपात में सात्त्विक गुण प्रगट होते हैं।

इसलिए आपश्रीने स्पष्ट लिखा है कि 'मौनमंदिर में बैठोगे तो भावना में ऊपर आ सकते हो। जो मथते हैं, उनको संस्कार पड़ेंगे। वे कहाँ जायेंगे ? अंदर बैठने वाले को ऐसे अनुभव होते हैं। तर्क की दृष्टि से भी प्रकाश का अनुभव होता है। कोई लाख रुपया दे उसकी अपेक्षा इस प्रकाश का अनुभव हो, यह विशेष है। क्योंकि उसके संस्कार आखिर कारणशरीर को स्पर्श करते हैं, उसके बाद आपश्रीने कारणशरीर की हकीकत समझाई है।

मौनमंदिर के ऐसे गहन-गूढ़ मर्म की हकीकत इस पुस्तक के प्रत्येक शब्द में छिपी हुई है। हार्द ग्रहण करने हेतु से पढ़नेवाले श्रेयार्थी पूज्य श्रीमोटा की वाणी की रहस्यमयता पा सकेगा। और मौनमंदिर द्वारा होते महान कार्य का आध्यात्मिक मूल्यांकन कर सकेगा।

पहले के दोनों पुस्तकों ने 'मौनएकांत की पगडंडी पर' और 'मौनमंदिर का हरिद्वार' अनेक जिज्ञासुओं को मौन-एकांत की साधना के प्रति अभिमुख किया है और प्रेरित किया है। उसी श्रेणी का यह तीसरा पुस्तक 'मौनमंदिर का मर्म' उतना ही मार्गदर्शक और प्रेरक बनेगा ही। इस संपादन निमित्त से पूज्यश्री की उपासना होती है, उसका आनंद है। इस कार्य का निमित्त बनने के लिए हरिःॐ आश्रम, सुरत के ट्रस्टिओं और पू. श्रीनंदुभाई का हृदयपूर्वक आभारी हूँ।

३२, पंचवटी सोसायटी, मणिनगर, **रमेश म. भट्ट**
अमदावाद-३८०००८

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	यात्रा का पाथेय	११
२.	समाज और कालपुरुष	१५
३.	मनुष्यजीवन का महत्त्व	२४
४.	महत्त्वाकांक्षा	२९
५.	सनातन सुख	३५
६.	चेतननिष्ठ का गूढ़ कार्य	४२
७.	खोजो तो मिलेगा	५०
८.	मौनमंदिर में धर्मसंस्कार	६२
९.	यह सब दुःख किसलिए ?	६७
१०.	सतत अभ्यास करें	७६
११.	मौनमंदिर—उत्तम सेवा	८३
१२.	भेद में अभेद	९४
१३.	शब्द का आध्यात्मिक विज्ञान	१०२

॥ हरिः ॐ ॥

निवेदन

पू. श्रीमोटा हरिःॐ आश्रम, सुरत में मौनार्थिओं समक्ष अपनी पावन वाणी द्वारा मौनएकांत की पद्धति के बारे में और जीवनविकास के प्रति किस तरह सावधान रह सकें उसके बारे में बोध देते थे । उस पावन वाणी को संग्रहीत स्व. श्री चूनीभाई तमाकुवाला और स्व. श्री चंपकभाई भूतवाला ने की थी । पू. श्रीमोटा उसे पढ़ लेते थे । इससे उसे अधिकृत मान सकते हैं।

पू. श्रीमोटा की इस पावन वाणी की हस्तलिखित नोंध की नोट-बुक सुरत आश्रम के मौनमंदिरों में रखी गई थी, जिसके पठन से किसी साधक को प्रेरणा मिल सके ।

कुछ साधकों की विनती से उस पावन-वाणी का संकलन स्व. डॉ. रमेशभाई भट्ट (Ph.D.) ने पाँच पुस्तकों में किया है। उनमें से इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद हमारे ट्रस्टीमंडल के एक ट्रस्टी श्री रजनीभाई बर्मावाला ने किया है ।

इस पुस्तक का चतुरंगी मुखपृष्ठ तथा मुद्रणकार्य श्री श्रेयसभाई पंड्या, मे. साहित्य मुद्रणालय (प्रा.) लि., अहमदाबाद द्वारा पू. श्रीमोटा के प्रति अपने प्रेमभक्तिभाव से किया है, उनका आभार मानने के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं हैं ।

इस पुस्तक के पठन से साधकजन यथोचित लाभ उठाएँगे ऐसी शुभेच्छा हम व्यक्त करते हैं ।

गीताजयन्ती वि.सं. २०७० **ट्रस्टीमंडल**

दि. १३-१२-२०१३ हरिःॐ आश्रम, सुरत

‘मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ !’

– मोटा

॥ हरि:ॐ ॥

१. यात्रा का पाथेय

यात्रा का हेतु

यात्रा करने का हेतु तो मंगलमंदिर खोलने का है । मूल में फेरफार करने के लिए यात्रा है । जिस वातावरण में हम जकड़े हुए हैं, उसमें से छूट जाना, हलकापन पाने के लिए बाहर घूमना, और अलग-अलग स्थानों को देखना, उसे लोग यात्रा कहते हैं । किन्तु यह गलत है, यह एक प्रकार का दंभ है । **यात्रा का सही हेतु तो हमारी भावना विकसित करने के लिए है । हमारे हृदय में रहा हुआ मंगलमंदिर खोलने का है ।** वह मंगलमंदिर खोलने के लिए आज आश्रम से दो भाई यात्रा करने जाते हैं।

यात्रा किस तरह करें ?

आज मुझे आपको इतना ही कहना है कि घूमते-फिरते उस प्रकार की बातें करें कि जिससे आपके हृदय में भावना विकसित हो । आप तप करने जाते हो । फिर आश्रम की ओर से जाते हो, इसलिए एक पाई का भी गलत खर्च मत करें। आपका सामान आप खुद ही उठावें । आप घूमने या शहरों देखने नहीं जा रहे हो उसका ख्याल रखना । मौज-मज़ा करने के लिए जाओगे तो उल्टे प्रकार के संस्कार दिल में दाखिल करोगे । इस यात्रा द्वारा हृदय के मंगलमंदिर खोलने का दिल में जागा होगा तो जरूर भावना विकसित होगी । ऐसी भावना

विकसित करने के लिए उसी प्रकार की ही बातें करें, उसी प्रकार का पढ़ें और उसी तरह रहें ।

दिल में भावना

दक्षिण में मंदिरों को देखकर ख्याल आएगा कि असल कैसी भावना थी । एक ऐसा मत भी है कि भावनाप्रधान राजाओं ने लोगों के पास जबरदस्ती से सब बंधाया है । किन्तु यदि जबरदस्ती से यह सब हुआ हो तो पत्थरों की कोरनि के कार्य में जो दिल लगाया है, वह नहीं होता । केवल बेगार जैसा कार्य होता । कुंभकोनम में एक मंदिर है, उसकी शिल्पकला के बखान 'कुमार' मासिक-पत्रिका में प्रगट हुए थे । बेगार कराकर या जबरदस्ती से ऐसे काम नहीं बनते हैं ।

संस्कार की असर

रशिया में भी जबरदस्ती से—बलपूर्वक काम कराते हैं, वह बात गलत है । लोगों में ऐसे संस्कार जरूर डाले हैं कि कोई कम काम न करे । प्रत्येक को ऐसा ही हो कि राष्ट्र को अधिक से अधिक काम—अधिक से अधिक उपज दूँ । वहाँ प्रजामानस में ऐसे संस्कार डाले गये हैं । प्रजा का मानस संस्कार द्वारा समग्ररूप से विकसित कर सकते हैं । रशिया ने दुनिया के समक्ष यह विराट प्रयोग रखा है । हमारे ऋषिमुनिओं ने कथा-वार्ता-आख्यान द्वारा इसी प्रकार की ही प्रणाली अंकित की है। वे मशाल लेकर सतत घूमते रहते, इससे अनेक गाँवों को उसका लाभ मिला था । उसके धार्मिक लाभ समूहरूप से उदित हुए थे । उन संस्कारों के कारण लोगों में भावना रही थी ।

यात्रा–एक माध्यम

यह मनुष्यजीवन है । वह खा-पीकर मज़ा करने के लिए या सुखी होने के लिए नहीं है, किन्तु उसका उच्च हेतु है । ऐसे हेतु के लिए भावना विकसित हो, उसके लिए अलग-अलग माध्यम-साधन खोजे थे । इस यात्रा पर जाने की खोज की है, वह भी भावना विकसित करने का एक माध्यम है । पहले की यात्रा यानी बहुत मुश्किल मार्ग । रास्ते में लुटने और जंगली प्राणिओं का भय रहता, उससे ऐसी यात्रा करने भावनाशाली लोग जा सकते थे । आज तो कोई भी व्यक्ति जा सकता है ।

भटकना नहीं

आज जो भाई जाते हैं, वे शहरों आते हैं तो उन्हें देखने के लिए नहीं जाते हैं, किन्तु भगवान की भावना दिल में उदित हो सके उसके लिए जाते हैं । दक्षिण में तो हमारे सुरत जितना आधा शहर समा जाय ऐसे जबरदस्त मंदिर हैं । वहाँ का राजगीरी और नक्काशी देखकर हमें लगता है कि दिल में भाव जागे बिना ऐसा नहीं बना सकते । इसलिए इस प्रकार की उच्च भावना विकसित करें, और जीवन में ऐसा बड़ा परिवर्तन करके आवें । ऐसा न किया तो यात्रा का हेतु फलित नहीं होगा। यों के यों वापस आओगे तो मैं सब के बीच कहूँगा कि 'ये तो भटकने गये थे ।'

देने का हेतु

मेरे गुरुमहाराज ने पहले कहा था कि 'जितना खर्च करने का हो उतना पाने की मनोवृत्ति रख ।' मेरे गुरुमहाराज ने तो मुझे कच्चा पारा दिया है, इसलिए आप तो जो दोगे वह हजम

हो जायगा, **किन्तु आप तो ऊँट लेकर सूई का दान करते हो, वह योग्य नहीं है ।** इसलिए देकर भावना पाने का करें। अन्यथा दिया हुआ भी बेकार जाएगा ।

मितव्ययिता और परिश्रम

यात्रा में दो समय ही भोजन करें । सामान सिर पर उठाने में कुछ शरम न रखें । आश्रम में मैं इस तरह करता था। एक बार नरहरिभाई परीख सामने मिले थे, तब उन्होंने पूछा था कि 'ऐसा क्यों ?' मैंने कहा था, 'मटका सिर पर रखकर ही इसमें मज़ा आता है ।' आप मितव्ययिता से रहें, 'मोटा' के अनुभवों के प्रसंगों की बातें करें । जिससे आपके दिल में भावना विकसित हुआ करे ऐसी बातें एक दूसरे को करें। कोई दूसरी बात करे तो दो सुना देना । आप ऐसा पाथेय लेकर आना कि हम गर्व के साथ कुछ कह सकें ।

दि. १६-७-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२. समाज और कालपुरुष

सतत नवसर्जन

मनुष्यसमाज को आगे बढ़ना हो तो वैसे समय का परिपाक होता है। उसके सामने कोई आदर्श हो तो मर मिटने की तमन्ना जागती है । यदि समाज के पास कोई आदर्श हो तो उन्नति के समय में वह ऊपर आयेगा । पूरी दुनिया में उत्थान-पतन का क्रम चलता ही रहता है । एक समाज का उत्थान होता है तो दूसरे समाज का पतन होता है । इस प्रकार समाज का नवसर्जन हुआ करता है और समय पार होते एवं क्रम से मानवसमाज ऊपर उठता है ।

समाज का कैसे उत्थान हो ?

जब समाज काल के शिकंजे में आ पड़ता है, भयंकर दुःख के दावानल प्रगट होते हैं, तब यही समाज घोर तंद्रा से कुछ करने के लिए तत्पर होता है और नई जागृति पाता है । उस समय उसके पास ऊँचा आदर्श हो और उस प्रकार की प्रवृत्ति में पड़ा हो, तो ही उसमें ऊँची भावना जाग्रत होने का उत्साह प्रगट होता है। वह जागृति न आ पाये तब तक पुनरुत्थान संभव नहीं है । जब पुनरुत्थान होना हो, तब ऐसा व्यक्ति भी जन्म लेता है। ऐसे व्यक्ति के कारण समाज में हिंमत, बल आता है । व्यक्ति में काल का जबरदस्त लक्षण होने से काल का जान पर खेलने का संकल्प प्रगट होता है। यह संकल्प विस्तार की दशा में आता है और मनुष्य-हृदय को ललकारता है। वह घोर तमस में पड़े हुए समाज को जगाता है। वह केवल उसे जगाकर बैठा नहीं रहता, उसे गतिशील होने की प्रेरणा देता है ।

नमक के सत्याग्रह में गांधीजी का दृष्टांत

गांधीजी का दृष्टांत मौजूद है । दांडीकूच के समय जैसे-जैसे दिन बीतता वैसे-वैसे उत्साह बढ़ता गया । वे इसमें क्रियाशील हुए कि दूसरों में भी वैसा ही उत्साह पैदा होने लगा। आरंभ में तो दांडीकूच की बात मजाक जैसी लगती थी । समाज को जाग्रत करने की ऐसी पद्धति पुराने समय से चली आई है । शुभ भावना का प्रतीक लेकर लड़ाई चलती । हमारे यहाँ नमक अच्छे सगुनवाला माना जाता है । उसका भावना में उपयोग होता है। घर बदलते हैं, तब भी कुंभ के साथ उसका उपयोग करते हैं। वह स्वाद लाने वाला और शरीर के आरोग्य के लिए भी आवश्यक है । वह स्वाद में खारा होते हुए भी रसोई में उत्तम प्रकार का स्वाद देता है । इससे हमें खूब संतोष होता है । नमक के पीछे की ऐसी भावना पकड़कर उन्होंने नमक का सत्याग्रह किया था और उसके द्वारा उन्होंने दिल का एक संकल्प प्रगट कर डाला । ऐसे दिल के संकल्प के साथ जिस समाज का संपर्क हो, उस समाज के दिल को भी वह संकल्प स्पर्श करता है । भावना गतिशील, चेतनवती है ।

माला भी प्रतीक

माला को साधन के रूप में पृथ्वी के अनेक धर्मपंथों ने स्वीकार किया है । मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध इत्यादि धर्मपंथों में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है । माला के कारण भावना प्राणवान रखी गई है, इसलिए भावना को पुनर्जीवन देने के लिए और उसे टिकाये रखने के लिए माला जरूरी है । भावना के प्रतीक के रूप में मुसाफिरी में भी माला गांधीजी के साथ ही रहती । जिस प्रकार की भूमिका विकसित करनी चाहिए उसे प्रगट

करने में भगवान का स्मरण यह उत्तम साधन है । उच्च प्रकार की ऐसी भावना द्वन्द्वातीत—गुणातीत स्थिति—चेतन की दृष्टि भी प्रगट हो सकती है ।

यह सच्चा दर्शन नहीं है

मुरली बजाते कृष्ण का दर्शन हुआ, वह चेतन का लक्षण है, ऐसा बहुत से कहते हैं । किन्तु उनके दिल से रागद्वेष तो मिटा ही नहीं, अतः उस दर्शन का कुछ अर्थ नहीं । उसका मूल्य तो वह दृश्य चलचित्र या चित्र में देखो उतना ही रहेगा। यदि दर्शन से जीवन की नई भूमिका प्रगट न हो, रागद्वेष फीके नहीं पड़ते, सहानुभूति प्रगट न हो, तब तक हुए दर्शन का कुछ भी मतलब नहीं । **सचमुच दर्शन का अनुभव हो, तब मनुष्य जीवदशा में नहीं रह सकता । उसमें रहे काम, क्रोध, आशा, तृष्णा इत्यादि भावना में प्रगट होते हैं; उन सब का ऊर्ध्वगमन (Sublimation) होता है । वह जीवन की प्रवृत्ति में पड़ा हुआ होने पर भी उसका मुख चेतन के प्रति होता है । वह रागद्वेष से प्रेरित नहीं होता, वैसी प्रवृत्ति में प्रेरणा नहीं पाता और जिन कर्मों को करना होता हैं, उसे उच्च भूमिका से करता होता है।**

भगवान का नाम लेने का क्या अर्थ ?

भगवान का स्मरण उच्च दशा में प्रेरित करने वाला साधन है । अनेक प्रकार की उलझनों, समस्याओं से अलिप्त रखने वाला अलौकिक साधन है । यों तो यह एक लम्बे काल से चली आ रही रूढ़ि है । यह तो जो उस दवा का उपयोग करे उसे ही पता लगता है । काम, क्रोध, मोह, मत्सर इत्यादि फीके पड़ जाँय या टल जाँय यह आसान बात नहीं है । अगर यह न बने तो भगवान का नाम लेने का अर्थ क्या है ? यद्यपि

ऐसा होते देर लगेगी, फिर भी यह प्रयोग कर लेने जैसा है। उलझन–समस्या आ जाय या कठिन समय में मानस तंग स्थिति अनुभव करे ऐसी बेला में एकांत कमरे में जोर से स्मरण करके देखो। पंद्रह–बीस मिनट ऐसा करोगे तो भी हलकापन लगेगा; पीड़ा कम हो जाएगी । मानते हों या नहीं मानते हों, किन्तु प्रयोग करने से विश्वास होगा । भगवान—चेतन—से सम्बद्ध संस्कार हमारे चित्त में सुषुप्त रीति से पड़े होते हैं । और वातावरण में भी ऐसे संस्कार होते हैं । साथ में चेतनात्मक शब्द के रटन से—ऊँची आवाज से—परिणाम आये बिना नहीं रहेगा ।

प्रभुस्मरण से निर्भयता

कितने ही मनुष्य कहते हैं सही कि वे रात्रि में कहीं भी जाँय तो भी उन्हें डर नहीं लगता है। ऐसा कहने वाले का चित्त समाज में डर या भय के संस्कारों को ग्रहण कर लेता है और ऐसे संस्कार जाग्रत हों इस प्रकार के प्रसंग मिलें, तब कैसी स्थिति होती है उसका पता लगता है । 'डर नहीं लगता' ऐसा कहने वाले को भी पसीना छूट जाता है । आरंभ में मुझे भी ऐसा होता था। यद्यपि अब ऐसा कुछ नहीं होता । भूतप्रेतादि के भय के संस्कार समाज के वातावरण में होते हैं। उसका भी जब उदयवर्तमान होता है, तब भी पता चल जाता है। इसप्रकार के भय के संस्कार नामस्मरण के परिणाम से कम हो सकते हैं।

सेवा करते हुए सावधान

यदि हम हेतु के प्रति जागृति रखकर नामस्मरण करेंगे तो हमारे अंतःकरण का रूपांतर होने का आरंभ हो जाता है । इस प्रकार भगवान का नाम लेने से डर कम होता जाता है । नामस्मरण द्वारा हमारे रागद्वेष फीके पड़ते हैं, ऐसे हेतु का ज्ञान

बहुत कम को प्रगट होता है । सेवा के क्षेत्र में लगे हुए को भी उसका जीवंत ज्ञान नहीं है । सेवा भी अपनी आत्मा के विकास लिए है, स्वयं के जीवन के उद्धार के लिए है, ऐसा भाव धारण करके सेवा करें तो रागद्वेष से मुक्त हो सकते हैं। अगर हम में भावना बढ़ती हो तो सेवा वह भी उच्च प्रकार का कर्म-साधन है । मैंने प्रभुकृपा से बीस वर्ष तक सेवा के क्षेत्र में काम किया है । मैंने देखा है कि इस प्रकार का ख्याल बहुत कम को था । मैंने तो गुरुमहाराज की कृपा से जाना कि सेवा भी हमारे अपने लिए है । उनकी कृपा से जान सका कि हमें रागद्वेष से मुक्त होना है ।

प्रभु का बेजोड़ सहारा

जिस प्रकार पानी के प्रवाह में लकड़ी बहती जाती है, वैसे हम समाज में चलती रूढ़ि—प्रवाह में बहती जाती हैं । उसमें से मुक्त होने के लिए यह सेवा का क्षेत्र मिला है । भगवान की कृपा से और पूर्व जन्म के संस्कारों के प्रताप से विघ्नों के अनेक अवसरों पर आश्वासन पाने के लिए भगवान का नामरूपी मित्र सदा हाजिर रहा है । कोई मित्र हो, वह भी इतना आश्वासन नहीं दे सकता कि जिससे हम सज्ज हो सकें । भगवान का सहारा इतना जबरदस्त है कि इस जगत में उसकी तुलना में और कोई हो सके ऐसा नहीं है । जिनमें ऐसा सहारा प्रगट हो, उसमें साहस, धैर्य, हिंमत प्रगट होते हैं । इसे जानें तो दंग हो जाँय। सन् १९२४ में 'नवजीवन' में 'लोहे के चने' विषयक गांधीजी का लेख पढ़कर मेरे में बहुत शौर्य प्रगट हुआ था । आज भी वह याद आता है । वह तो अंग्रेज सल्तनत को चुनौती देनेवाला सिंह था । वह था तो हमारे जैसा ही किन्तु

ऐसा सिंहपन भगवान के स्मरण से ही पाया था । अनेक भक्तजनों के जीवन में ऐसी हकीकतें घटित हुई हैं ।

हमारी गति-प्रगति

भगवान का नामस्मरण हमारी भावना को कोमल-कोमल रखकर चेतनवंत बनाता है । इस दुनिया में उसके जैसा दूसरा साधन नहीं है । अगर हम उसका सातत्य बना सकें तो रागद्वेष से मुक्ति पा सकते हैं । हमारी बुद्धि स्वतंत्र नहीं होती । उसमें भी अनेक प्रकार के उल्टे-सीधे और परस्पर विरुद्ध भाव उठते हैं । जिस प्रकार के भाव उठते हैं, उसीप्रकार बुद्धि हल देती है और हमारा अहम् उसमें गति कराता है । सच पूछो तो हम स्थगित हो गये होते हैं । इसप्रकार हम गति कर रहे हैं, ऐसा दिखता है सही, किन्तु यह गति तेली की धानी में जोते हुए बैल जैसी होती है । गतिमान दिखता होता है फिर भी हमारी गति आगे नहीं जाती है । इसमें से मुक्ति पाने के लिए अगर ललचाएँ या तत्परता प्रगट हो तो उसी ढंग से उस वस्तु के प्रति मन का खिंचाव रहता है । ऐसी तत्परता के परिणाम का अनुभव जिंदगी में हुए बिना नहीं रहता ।

जागृतिपूर्वक गति

अगर सद्‌वृत्ति, सद्‌भावना के प्रति तत्परता जाग्रत हो तो गतिमान हुए जीव को ऊपर उठने की स्थिति होती है । उसमें से बाहर निकलना हो तो सजगता वाली संपूर्ण जाग्रति रखें तो अवश्य मुक्त हो सकेंगे । **किसी परंपरा से मुक्ति पाने का सरल उपाय भगवान का स्मरण है ।** इसलिए हम अनेक प्रकार के भावों को उच्च दशा में प्रगट करें तो वह चेतन के रास्ते पर ले जाता है ।

आनेवाले काल का भविष्यकथन

हिन्दुस्तान की संस्कृति में संत-संस्कृति की परंपरा है। आज भी वह परंपरा चालू है। हम उच्च हैं, ऐसा अभिमान रखते हैं सही, किन्तु वैसा अभिमान रखने के हम लायक नहीं हैं; क्योंकि वर्तमानकाल में हमारे में निरा तामस भरा पड़ा है। उसे जगाने का काल आएगा और काल के कारण से इस घोर तमस का नाश होगा। यह आज नहीं तो कल वह प्रगट होगा। आनेवाले पच्चीस-तीस वर्ष की अवधि दुःख की परंपरा वाली रहने वाली है। मैं ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान से नहीं कहता, किन्तु अनुभव के ज्ञान से कहता हूँ।

दुःख किस प्रकार आएँगे ?

फिर भी दुःख बिना सिद्धि नहीं है। दुःख आये तभी मनुष्य सोचता है। **अतः समाज के उत्थान और पुनरुत्थान के लिए घोर दुःख का प्रागट्य जरूरी है।** अभी का दुःख तो थोड़ा है। आज जलप्रलय या ऐसा कुछ होता है। पृथ्वी के अंदर और बाहर एक सूक्ष्म वातावरण होता है। उस वातावरण को हम नहीं देख पाते हैं। उसे तो जिसे ऐसी दृष्टि प्रगट हुई हो वही देख सकता है। हमारे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे एक वातावरण है। उसमें परिवर्तन हो सकता है। पाँच तत्त्वों के वातावरण की समतुला में किसी कारण से क्षोभ प्रगट हों। इससे समतुला टूटती है। परिणामस्वरूप वातावरण में परिवर्तन आता है। भूचाल, बवंडर, प्रचंड बाढ़ ऐसे क्षोभ के कारण होते हैं। हमारे यहाँ बाढ़ आयी है। उसने समाज की रीढ़ तोड़ डाली है। फिर भी समाजशरीर की व्यवस्था नहीं टूटी। समाज तो घोर तमस में पड़ा हुआ था फिर भी

वह टिका हुआ है, किन्तु उतना उत्थान नहीं पाया कि तमस में से बाहर निकल सके ।

कालपुरुष आएगा

मद्रास (चेन्नाई) में रहते मेरे एक मित्र ने जर्मनी की तहस-नहस स्थिति देखी थी । उस समय वहाँ डबलरोटी के एक टुकड़े के लिए भीड़ हो जाती। आज अंतिम दशक में वह ताकतवर और समुन्नत हो गया है । वह कठिनाइयाँ सहन कर सका, तब आज वह दूसरों को मदद देने तत्पर हो गया है । दुःख में से सच्चा मार्ग निकाले ऐसा कोई साधन हो तो भगवान का स्मरण ही है । वह प्रत्येक जीव के लिए है, किन्तु सभी के लिए संभव नहीं है । क्योंकि सभी उसे ग्रहण नहीं कर पाते उसका स्वीकार करना कठिन है । वह तो वैसा काल या कालपुरुष प्रगट हो तो ही समाज में भावना प्रगट करा सकेगा। भावना को जीवंत प्रगट कर पाने का कार्य कालपुरुष का है।

किन्तु ऐसा कालपुरुष कब आएगा ? जब समाज में दुःख की घोर परंपरा प्रगट होगी, तब उसमें से बाहर निकालने के लिए कालपुरुष अवरित होता है । किन्तु हम उस काल को जल्दी परिपक्व करने की तैयारी कर सकते हैं, और वह भी दिल की भावना से करें तो अधिक अच्छा ! मिले हुए जीवों के साथ शून्यवत् होने का और आचरण कर सकें तो ही अच्छा है ।

काल कैसे परिपक्व होगा ?

दूसरे के अवगुण न देखें और केवल गुण देखें, सुमेल से——अच्छी भावना से देखें और अनुभव करते हों तो भी ठीक है। प्रयत्नपूर्वक काल को शीघ्र अविरत करने हेतु इतना तो

अवश्य हो सकता है । साथियों के साथ सद्भाव से, प्रेम से, त्याग की भूमिका से बरतते जाँय तो पुनरुत्थान विशेष प्रकार से हो सकता है । व्यवहार में प्रत्येक समाज से वैसा नहीं होता। वैसा प्रगट होना आसान नहीं । वैसी भावना प्रगट करने के लिए भगवान की भावना के प्रति ध्येय प्रगट हो तो हो सकेगा। त्याग की भूमिका अनेक प्रकार से प्रगट हो सकती है । त्याग की भूमिका प्रगट हुए बिना मनुष्यजीवन का ऊँचा उठना संभव नहीं है, दूसरों को उदारता से, प्रेम से सहन करें तो वह भी बड़ा तप है । किन्तु सामान्य व्यक्ति को ऐसा बरतने का दिल नहीं होता । इसलिए ऐसी भावना प्रत्येक में जागृत हो और किसी-प्रकार से उसके दिल को थोड़ा-सा भी ऊपर उठा सकते हैं । ऐसा मेरा अनुभव है । उसके लिए एकमात्र उपाय भगवान का स्मरण है । केवल आज के लिए ही नहीं, किन्तु लम्बे काल तक जीवंत रखने का है । क्योंकि उस प्रकार के अच्छे प्रकार के संस्कार वातावरण में हैं ।

दि. १०-१०-१९६१

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३. मनुष्यजीवन का महत्त्व

जीवनरूपी रत्न

शास्त्रकार और अनुभवी कह गए हैं कि मनुष्यशरीर द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है । देवों के लिए भी मुक्ति दुर्लभ है। देवों को भी मुक्ति पाने के लिए मनुष्यजीवन धारण करना पड़ता है । हमें मनुष्यजीवन रूपी बड़ा रत्न मिला है । हम उसकी कीमत नहीं जानते । हमें उसका रहस्य मिला नहीं है। हम मनुष्यजीवन का अर्थ नहीं समझते और पशु की तरह जीवन जी रहे हैं । हमारे जीवन की अपेक्षा पशु का जीवन अच्छा है; क्योंकि उसे पाप-पुण्य का बंधन नहीं है । मनुष्य उससे भी गयागुजरा प्राणी है । वह अनेक प्रकार के पाप करता है और पुण्य कम करता है । हमें तो ऐक्य सिद्ध करना है । परस्पर मदद में लगना है । किन्तु वह हमारे से नहीं बनता । उसके विरुद्ध हम निंदा, ईर्ष्या इत्यादि पैदा करके पापाचरण करते हैं।

वृत्ति का उपभोग

मनुष्य का शरीर मात्र ही नहीं किन्तु मन, बुद्धि, प्राण, चित्त, अहम् सभी कीचड़ से लथपथ हुए हैं । पशुशरीर को बंधन नहीं है, क्योंकि उसे तो भोगयोनि कहते हैं । इसलिए वह तो भोगा करे । उसे तो चार वृत्ति हैं : आहार, निद्रा, भय और मैथुन । हमारी भी ये चार प्रकार की वृत्तियाँ हैं । उनके द्वारा हम अनेक प्रकार के पाप करते हैं । किन्तु **पशु उन वृत्तिओं द्वारा पाप नहीं करते, क्योंकि वे कुदरत के नियमों का पालन करते हैं, कुदरत के कानून अनुसार मैथुन भोगते**

हैं । उसके बाद उसकी विस्मृति हो जाती है । स्वाद लगा इसलिए आहार के प्रमाण से अधिक खाना ऐसा पशुओं में नहीं है । उनमें तृष्णा और लोलुपता नहीं है । वृत्तिओं का उपयोग स्वाभाविक हो, उसमें पाप नहीं है, किन्तु उसके लिए लालसा, छटपटाहट हो तो वह पाप है। मनुष्य इन वृत्तिओं में इतना फँसा है कि उसे दूसरा भान नहीं जाग पाता। जीवन में सद्भाव और सद्गुण प्रगट करना चाहिए। जिससे जीवन शोभित हो ऐसा बरतने का उसे पसंद नहीं । अनुभविओं ने तो देखा कि मनुष्य पशु से भी बुरा होता है । एक कर्म करते अनेक कर्म पैदा करता है। एक जन्म लेकर अनेक जन्मों का पाथेय इकठ्ठा करता है ।

हरि:ॐ आश्रम का हेतु

मनुष्य को मनुष्य की तरह जीना चाहिये, उसका भी उसे भान नहीं है । एक-दूसरे के अवगुण न देखें । दिखें तो मन में संग्रह न करें । सुमेल से रहें । रागद्वेष फीके करें। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, तृष्णा, लोलुपता इत्यादि फीके करें। किन्तु ऐसा तो कोई करता नहीं । अगर इसके अनुसार हो तो ही वह गौरव प्राप्त कर सकता है । हम इस दृष्टि से बुद्धि द्वारा सोचें तो पशुयोनि से भी हम बुरे हैं । यह मानव शरीर मिला है, उसका भान जागे इसलिए तुम सभी को कहना है कि यहाँ आयें, तब हमारे मन में जीवन की उच्चता का सवाल लेकर आयें। आज मंगलवार को प्रार्थना के दिन भी हम वही की वही बात लेकर न आयें । **मनुष्यजीवन के बारे में विचार करना नहीं हो तो यहाँ आने का कोई मतलब नहीं ।**

संसार-व्यवहार में प्रारब्धयोग से जो व्यक्ति मिले उसके जीवन को भावना में ऊपर उठाने का इस स्थान पर मिलने का हेतु है। इसके लिए गुरुमहाराज की कृपा से यह आश्रम किया है । मैं तुम्हारा संबंध चाहता हूँ सही, किन्तु आपको तिलभर खिसकना न हो या आप में तनिक सा भी परिवर्तन नहीं होने देना हो तो ऐसे संबंध की आवश्यकता नहीं हैं । इसकी अपेक्षा मेरा भगवान के साथ का संबंध अच्छा है। आपको रागद्वेष के खड्डे में पड़ा रहना हो तो मेरे साथ के संबंध का कुछ मतलब नहीं है ।

स्वभाव-परिवर्तन अनिवार्य

कोई कहेगा कि ऐसा कहोगे तो फिर आश्रम कैसे चलेगा ? तो यह मेरा जीवन इस पर आधारित नहीं है । **आश्रम नहीं चलेगा तो हम बंद कर देंगे । इसलिए तुम उस विषय में मत सोचो ।** किन्तु यहाँ आने के लिए घर से निकलो और फिर घर पहुँचो तब तक एक ही भाव में रहो । लोग तो मंदिर में दर्शन करने जाते हैं, तब इधरउधर की बातें करते जाते हैं । इस तरह बातें करते आने का कोई अर्थ नहीं है । उसकी अपेक्षा तो न आओ तो अधिक अच्छा । **न भगवान का नाम लेना और न स्वभाव बदलना, संसार में एकदूसरे के लिए त्याग करने की सहनशक्ति विकसित नहीं करनी है तो फिर यहाँ आने का कोई अर्थ नहीं ।**

''मोटा'' की शर्त

किसीको लगेगा कि **मोटा** पहले तो इतना नहीं बोलते थे, किन्तु अब तो बहुत झाड़ते हैं, पहले तो मैं परिचय विकसित करता था । मैंने तो लोगों के बीच रहकर भगवान की भक्ति की है । आप सब मिले हो तो आप सब ऊपर उठो उसमें मेरा

स्वार्थ है । मुझे मेरी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना है । भावना से ऊपर उठने का प्रयत्न करो तो संबंध रखना है । यह तो ''हम कहें तब आप उपयोग में आओ, किन्तु आप कहो तब मैं उपयोग में नहीं आऊँगा'' ऐसा एकमार्गी व्यवहार की हमें आवश्यकता नहीं है । आप ऊपर उठो तो हम आपको भगवान की कृपा से मदद कर सकते हैं । किन्तु गंदे रहो तो मुझे संबंध की आवश्यकता नहीं है । हमारा भगवान हमें मदद करेगा ।

'मोटा' का समर्पणयज्ञ

हमें कुछ स्वार्थ नहीं है । केवल आपके काम में आना है, किन्तु आपको प्रयत्न करना पड़ेगा । हमने तो हमारा जीवन पूर्ण रीति से और पूर्ण भाव से दे दिया है; फिर भी सदा ऐसा लगा करता है कि भगवान को दिया करें । समर्पण का कभी भी अंत नहीं है । मुझे इतने से संतोष नहीं है । आपके पास भी समर्पण करा-करा के भगवान के चरणकमल में आपकी भेंट देनी है । ऐसा हो तो हमारा जीवन सफल हो ।

मुक्त के जीवन द्वारा प्रभुकृपा

इसलिए मनुष्यजीवन का हेतु क्या है वह समझो । कड़वापन छोड़ो । दूसरे की निंदा करना छोड़ो । अवगुणों को देखने की दृष्टि छोड़ो । एक-दूसरे के दुःख में किस तरह मदद में आ सको यह देखो । एकदूसरे के जीवन में खुलापन प्रगट हो वह देखो और ऐसे करते-करते भगवान का नाम लें तो भगवान की कृपा तो है ही ! वह तो सदा-सर्वदा विकसी हुई है । फूल बाग में होता है, उसकी सुगंध चारों ओर फैलती है, वैसे

मनुष्यसमाज में अनंत प्रकार की भावनाओं से प्रकाशमान आत्माओं की सुगंध प्रगट हुई है, ऐसे लोगों के जीवन द्वारा भगवान की कृपा प्रसरित होती है, उसका भान हमें जागता नहीं है ।

'मोटा' की तैयारी

'मोटा' के संबंध में आये हो तो विचार करो । कोरे-कोरे मत रहो । मेरी तो तत्परता वाली तैयारी है । बुद्धि से सोचकर नहीं, किन्तु भगवान की प्रार्थना करके मदद में आने का प्रयत्न करता हूँ । मेरे दिल में तो आपको उपयोग में आने के लिए सचमुच की उत्कटता है । किन्तु उसके साथ भावना द्वारा ऊँचे आने की आपकी भी तैयारी चाहिए ।

प्रभु गरुड़ पर चढ़कर आएँगे ।

जीवन में एकदूसरे के साथ त्याग करके भी सद्‌भाव, सुमेल प्रगट करके जीयें । दूसरों के संबंन्ध कम बातें हों ऐसा करें । हमारे घर में, कुटुंब में एकदूसरे के दोषों की बातें न करें । इतना करने की आदत बनायें तो भी पर्याप्त है । अन्यथा ठंड में यहाँ आने का अर्थ नहीं है । मनुष्यजीवन मुश्किल है। हमारे से बन सके तो रागद्वेष फीके करें । किसी के कदाचित् अवगुण दिख जाँय तो भी हम बदनाम न करें। इतना करें तो भी मुझे लगता है कि बहुत किया है । ऐसा करोगे तो भगवान गरुड़ पर चढ़कर मदद करने आएँगे । अन्यथा प्रभु मदद नहीं करेंगे ।

दिनांक ३१-१०-१९६१

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४. महत्त्वाकांक्षा

अभिलाषा साकार करो

जीवन में आनंद प्रगट करना हो तो महत्त्वाकांक्षा बनानी चाहिये । इतना ही नहीं किन्तु उस महत्त्वाकांक्षा को साकार करने के लिए क्या करना चाहिए, उसका ख्याल भी आना चाहिये एवं उसके लिए विचारपूर्वक योजना भी होनी चाहिए और उसके अनुसार वह जीवन बिताता होना चाहिये । ऐसा हो तो ही वह मानवी अभिलाषा पूर्ण कर सके । किसी भी प्रकार की महत्त्वाकांक्षा हो, किन्तु उसके लिए जो चैन से बैठता नहीं, उसे आनंद प्रगट हो सकेगा । जो केवल अभिलाषा रखे और कुछ करे नहीं एवं आडंबर रखे, किन्तु छोटा से छोटा निश्चय प्रगट नहीं कर सकता ऐसा जीव किस प्रकार की अभिलाषा पूर्ण कर सकता है ?

आनंद और रस वही जीवन

जिसकी अभिलाषा का प्रकार ऊँचा हो, उसे विशेष सहन करना पड़ता है । उसके लिए शौर्य, उदारता, धैर्य, साहस, हिम्मत इत्यादि गुणों का पाथेय चाहिये । वैसा जीव अभिलाषा के मार्ग पर जा सकता है । उसे जीवन में आनंद होता है । जो ऐसा कहते हैं कि हमें जीवन में रस नहीं है, तो वह बात बिलकुल गलत है । जिसके जीवन में से रस चला जाता है, उसका जीवन चला जाता है । मनुष्यजीवन आनंद और रस के लिए है ।

महत्त्वाकांक्षा की निशानी

हमारे बहुत से दिन सुख में बीतते हैं । शरीर के दुःख के बहुत कम दिन होते हैं, फिर भी दुःख के दिनों का समय बहुत लम्बा लगता है । आरोग्य का काल यानी कल्याण, हित और श्रेय का काल । सुख की अवधि जितनी लम्बी उतनी आनंद की अवधि भी लम्बी । अब हमें जो समस्या और कठिनाई अधिक पीड़ाकारी लगती है, उसका कारण यह है कि हम उसमें डूब जाते हैं, किन्तु जिसे सचमुच महत्त्वाकांक्षा प्रगट हुई होती है, वह किसी में भी डूब नहीं जाता । यह महत्त्वाकांक्षा की निशानी है ।

अनुभव करके समझो

मनुष्य लस्टम-पस्टम आनंद भोगता है, उसका कुछ अर्थ नहीं। मनुष्य के अतिरिक्त योनि के जीवों को द्वन्द्व नहीं है। **जो द्वन्द्वातीत और गुणातीत दशा में जीता है, उसे आत्मा कह सकते हैं ।** जिसके जीवन में महत्त्वाकांक्षा प्रगट होते ही उसे पूर्ण करने के लिए उसमें उत्साह प्रगट हो, वह मयुर के मुआफिक मस्ती से नाचे, उसमें हर्ष का उन्माद प्रगट हो वैसा जीव महत्त्वाकांक्षा साकार कर सकता है। यह हकीकत का शब्द में वर्णन नहीं कर सकते । वह तो अनुभव करके ही समझ सकते हैं ।

ब्रह्म की बातों का भ्रम

अब महत्त्व की बात पर आऊँ । सामान्य आदमिओं चाहे इस तरह बातें करें उसका तो कुछ महत्त्व नहीं है । किन्तु आध्यात्मिक प्रकार की बातें करने वाले जब ब्रह्म की और ऐसी दूसरी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, उनको मैं कहता हूँ कि तेरा जीवन जो देख । ब्रह्म की बातें करता है, उसे नहीं झेल सकते।

मेरे गुरुमहाराज की तो आज्ञा है कि ऐसे लोगों का तो भ्रम तोड़ो। वे अगर अपने जीवन में सुधार न करें तो शराब पीकर शराबी लस्टम-पस्टम बकता है वैसी बात कही जाएगी। संसारव्यवहार में, दुनियादारी में महत्त्वाकांक्षा को साकार करने सतत प्रयत्नशील रहें तब वह साकार होता है ।

अपने को जाँचो

भगवान की बात करने वाले जीव कुछ मेहनत नहीं करते। उनके विचार और आचरण में कुछ ठिकाना नहीं है । ऐसे जीव भगवान की बात करते हैं, तब मुझे बहुत दु:ख होता है । ऐसे लोग दूसरों के बारे में बात करते हैं, तब कहता हूँ कि आप अपने को जाँचो । तू कितना ऊँचा गया है, कितना गहरा पड़ा है, उसका विचार कर, दूसरों को देखना छोड़ दे ।

संसारी मनुष्य बातें करते हैं तो भले करें । वे तो स्वार्थ में ही पड़े हुए हैं, किन्तु भगवान के मार्ग पर जाने की बात करने वाले को तो बेधड़क कहना ऐसी गुरुमहाराज की आज्ञा है। छोटी-सी भी अभिलाषा साकार कर सको तो आत्मविश्वास प्रगट होगा कि मेरे से कुछ हो सकेगा । बिना अभिलाषा का जीवन कभी नहीं जीवें । अभिलाषा न हो तो लाचार बन जाते हैं। बिना अभिलाषा का जीवन फटेहाल स्थिति जैसा है । थोड़ा सा आनंद और रस का जिसे अनुभव करना है, उसे अभिलाषा रखनी चाहिए । उसके लिए सावधानी के साथ लगे रहें, उत्साह, शौर्य इत्यादि गुण विकसित करने की आवश्यकता भी है । जीवन यह स्थूल नहीं है, किन्तु उच्च प्रकार की अभिलाषा साकार करने के लिए एक अमूल्य साधन है । मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् वे साधन हैं। अपने जीवन को इन पाँच साधनों द्वारा आकार दे सकते हैं ।

मनुष्यजीवन में सामर्थ्य

इसके विरुद्ध कितने ही प्रारब्ध की बात करते हैं । मुझे पूछते हैं कि इस प्रकार का जीवन हमारे प्रारब्ध में न हो तो किस तरह बन सकेगा ? अबे, तुम क्या जानते हो कि तुम्हारा प्रारब्ध कैसा है ? संसार में बहुत से व्यक्तिओं ने इच्छित कार्य पूरा किया है । तो फिर वे लोग कहते हैं कि उनके प्रारब्ध में होगा। ऐसी दलील करने वाले को मैं कहता हूँ कि आपको आपने आप पर विश्वास नहीं है ।

आप में वैसे गुण नहीं हैं, ऐसा मानकर सब प्रारब्ध पर छोड़ देते हो । इसलिए आपको कहता हूँ कि जो कुछ छोटी अभिलाषा हो, उसे साकार किये बिना चैन से मत रहो । अगर तुम मेहनत करके अपनी अभिलाषा को आकार दे सकोगे, उसे पूर्णरूप से पार करोगे तो तुम में श्रद्धा प्रगट होगी । अगर वह प्रगट हो तो हम जीवन को समृद्ध बना सकेंगे । मनुष्ययोनि में जो चेतन है, उसे पूर्णरूप से अनुभव करने की संभावना है और वह केवल मनुष्यजीवन दरमियान ही संभव है । पशुयोनि, देवयोनि एवं पृथ्वी के अतिरिक्त लोक में चेतन के अनुभव की संभावना नहीं है । जहाँ ये पाँच तत्त्व वाले शरीर हैं, वहाँ सभी चेतन को अनुभव करने में समर्थ हैं ।

मुफ्त का नहीं पचता

बहुत से लोग संसार की बातें करते हैं, तब भी उनमें भावना, उत्साह प्रगट हुए नहीं होते हैं । यहाँ आकर ऐसे लोग प्रश्न पूछते हैं और हम उत्तर भी देते हैं, किन्तु उससे उनकी दरिद्रता नहीं जाती । क्योंकि केवल बुद्धि की खुजली से पूछते हैं । प्रभुकृपा से उनकी गति भी समझ सकते हैं । जहाँ तक

सत्संग की भावना प्रगट नहीं हुई है, वहाँ तक आपका कुछ सिद्ध नहीं होगा। मेहनत किये बिना मागने से कुछ नहीं मिलता। **आपको कोई अपेक्षा हो तो मेहनत करो, आश्रम का काम करो तो फल मिलने का हो तो मिलेगा । मुफ्त का किसीका भी मत लो । क्योंकि मुफ्त का लिया हजम नहीं होता ।** हम तो मेहनत का खाते हैं। यहाँ का तो भगवान की कृपा और आप सब का सहारा है, उससे चलता है ।

ऊँची बात के साथ नर्क में ?

कोई महात्मा यों ही कुछ नहीं दे देता । जीवन में कुछ भी पाने के लिए संघर्ष पड़ता है । तो फिर भगवान की भावना कैसे पा सकोगे ? अभी तो मन इधर-उधर भटकता रहता है । संसार का अपना काम तो किया कर । ऊँची बात लेकर नर्क में घूमा करना यह कैसे चलेगा ? जो लोग भगवान की बात करते हों, उनको अवश्य कहना कि वे अपनी स्थिति समझ सकें ।

महत्त्वाकांक्षा का बल

सर्वप्रथम तो महत्त्वाकांक्षा की आवश्यकता है । उससे जीव आत्मा को पा सके । ब्रह्म भी बन सके । किन्तु उसके लिए रक्त का बिन्दु-बिन्दु खर्च करने की तत्परता होनी चाहिए । जिस में वह प्रगट हुई है, वह नर्क के गड्ढे में पड़ा हुआ हो तो भी अपने को ऊँचे ले जाने की उसमें शक्ति प्रगट होती है। हम हमारे ध्येय के मार्ग पर सीधे और सरल रीति से जा सकें तब जानना कि हमारे में सच्ची महत्त्वाकांक्षा प्रगट हुई है । ऐसे प्रकार की महत्त्वाकांक्षा जो जीव में प्रगट होती है, तो वह जीव आज या कल ब्रह्म का अनुभव कर सकेगा । **जिसमें ऐसी महत्त्वाकांक्षा नहीं है, वह पंगु है । ऐसे को ब्रह्म की बात**

करने का अधिकार नहीं है । वैसे लोग भले प्रार्थना करें, भजन करें तो भी उनमें कुछ दम नहीं प्रगट होनेवाला है। उसकी अपेक्षा तो लोगों के साथ सद्‌भाव और प्रेम से व्यवहार करें तो वह अच्छा है ।

भगवान के मार्ग के लिए

व्यापार करना होता है तब भी जानकारी, चतुराई, कला, पैसे की शक्ति, हमें कौन मदद करेगा उसकी जानकारी इत्यादि का विचार किया जाता है । तो भगवान के मार्ग पर भी जाने के लिए भी इस प्रकार का विचार करना है । उच्च ध्येय रखकर शक्ति का पूरा उपयोग करके आनंद में रह सकें और उसके अनुसार जीवन जीया करें तो ही बन सकता है ।

यह सब आपको कहने का मेरा हेतु यह है कि भगवान की कृपा से हम मिले हैं और जैसे है तैसा जीयें उसका कुछ अर्थ नहीं है । जीवन में एकदूसरे की सहानुभूति पायें । आज करने के कामों को गति-उत्साह से आरंभ करें, तो हमारे में शक्ति का संचार होगा । वह कर्म करते-करते भगवान का स्मरण करें तो जीवन में मिलने का अर्थ है । हमें मिला हुआ काम आज बराबर नहीं कर सकें तो भगवान का काम किस तरह करेंगे ? सभी कार्य निरासक्त, निर्ममत्व और निरहंकार भाव से भगवान को समर्पण करके करो । ऐसी धारणा रखकर हम कर्म करेंगे तो भगवान की भावना विकसित करने की भूमिका पाएँगे।

दिनांक १८-११-१९६१

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५. सनातन सुख

सिंह का बच्चा-भेड़िया के झुंड में

समाज में बहुत से लोग बोलते हैं कि मनुष्यजीवन मुश्किल है । इतनी समझ लोगों को है, किन्तु मनुष्यशरीर—यह जीवन——किसलिए मुश्किल मानते हैं, यह बहुत कम लोग जानते होते हैं। हम चेतन को 'भगवान', 'परब्रह्म', 'पुरुषोत्तम' इन सब नामों द्वारा मानते हैं। उसका ही व्यक्त स्वरूप यह मानवशरीर है, फिर भी वह चेतन का पूर्ण रूप नहीं है । अत: उस चेतन के अनुभव के लिए यह मनुष्यजीवन मिला है । किन्तु हमें उस बात का होश नहीं है । सिंह का बच्चा भेड़ के बच्चों के साथ रहे, उसके साथ घूमता रहता है तो वह उनके जैसा ही बन जाता है । उसमें सिंह का सामर्थ्य नहीं रहता । उसे भेड़ के जीवन का अभ्यास पड़ जाता है । उसी तरह हम चेतनमय होते हुए भी द्वन्द्व और गुण में प्रगट हुए होने से हमें चेतन का ज्ञान नहीं रहा है । उस चेतन का अनुभव करने के लिए यह मानवदेह मिला है । उसके सिवा चेतन का अनुभव नहीं होता है ।

श्रीकृष्ण भगवान

देवयोनि भी भोगने की योनि है । पुण्य समाप्त हो, इससे फिर मनुष्ययोनि में जन्म लेना पड़ता है । जब भक्त लोग दुष्ट लोगों के द्वारा तंग होते हैं, तब वे भगवान को पुकारते हैं कि 'हे भगवान ! इस पृथ्वीरूपी गाय को छुड़ाओ' उनकी ऐसी पुकार से भगवान मनुष्य का जीवन धारण करके भक्त लोगों को आतंक में से मुक्त करते हैं । वे मनुष्यसमाज को ऊर्ध्वगति में

प्रेरित करने के लिए धक्का लगाते हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान थे। उनके कुटुंबीजनों-यादव उन्हें पहचान न सके। वे सत्ता के मद में अंध बन गये थे। ऋषिमुनिओं का भी उपहास करते थे। अंत में शराब पीकर आपस में लड़कर मरे। महाभारत के युद्ध में कितने ही मनुष्यों का संहार हो गया। अर्जुन कहता था कि इस युद्ध में मुझे प्रेरित मत करो, युद्ध के परिणाम से जो वर्णसंकर प्रजा होगी, उसका पाप मुझे लगेगा। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि तू मेरा भक्त हो जा। बाद में कुछ भी करेगा तो भी पाप नहीं लगेगा।

भगवान पृथ्वी पर आते हैं, उसका हेतु होता है। फिर भी उसका लाभ सब नहीं ले सकते। वह तो जो भक्त होता है, वही उसका लाभ ले सकता है।

ज्ञानभक्ति से निकटता

कोई महात्मा चेतन में प्रगट हुए हों, उसके पास चालीस वर्ष तक रहे हों, तब भी बिलकुल कोरे होते हैं। उसमें रागद्वेष भी अधिक होंगे। **उपनिषद अर्थात् पास में होना—ऐसा जो अर्थ होता है, उसका मर्म यह है कि ज्ञान और भक्ति से पास में रहना चाहिये।** इसके लिए भी चेतन प्रति अभिमुखता चाहिए। चेतन में दिल मिला होना चाहिये। जब चेतननिष्ठ की बातें सच्ची लगें, तब उसके जीवन में वे उतरेगी। त्याग करते रहो। स्वार्थभावना को ऊँचे प्रगट करने के लिए मथन करो तो विशेष लाभ होगा। रागद्वेष फीके करें तो ही भावना ऊँची होगी।

भूमिका तैयार करो

हमारे में भावना तो है, किन्तु उसका शीघ्र उठाव नहीं होता है। हम रागद्वेष से घेरे गए हैं। पतंग कब ऊँचे जाएगी ?

हवा हो तो किन्तु हम उसे डोरी दें तभी ऊँचे जाएगी । भावना को उठाव देने हमारे में भूमिका प्रगट हो, उसके लिए सदा दूसरे को सुख देने का विचार करो । **दूसरे को सुख दोगे तो ही आप सुखी होंगे ।**

भ्रम में मत रहो

प्रारब्ध तो व्यवहार में है । भगवान की चेतनात्मक गति में उड़ने के लिए प्रारब्ध बिलकुल अवरोध नहीं करता । मनुष्यजीवन मिला है, यही बता देता है कि चेतन को अनुभव करने की संभावना है । किन्तु उसके लिए हमारे में ज्वालामुखी जैसी धधकती भावना प्रगट नहीं हुई है । इच्छा होनी यह आवश्यक है, किन्तु उसका विचार नहीं आता । विचार आएगा तो भगवान की भक्ति किये बिना रहेगा ही नहीं । **भावना का साकार स्वरूप भक्ति है ।** कोई व्यक्ति भगवान का नाम लिया करे, बैठकर केवल वही कर्म किया करे, फिर भी रागद्वेष में ही रहता हो तो उस क्रिया को भी मैं तो दंभ ही कहता हूँ । लोग कहते हैं कि रोज करोड़ जप करो तो मोक्ष मिल जाएगा। ऐसा कहने वाले को मैं कहता हूँ कि वह बात गलत है । लोगों को भ्रम में मत रखो । **अगर रागद्वेष फीके न पड़ें; काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, ईर्ष्या कम न कर सकें तो सतत जप का भी उठाव नहीं आएगा।**

प्रभु के प्यारे बनो

गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग ऐसे सब अलग-अलग बताये हैं । कुदरत का विचार करो । देखो, ऐसे नीम एक ही है, किन्तु उसके अलग-अलग रूप हैं, मनुष्य भी एक ही है, किन्तु रूप अलग हैं । भगवान एकरूप होते हुए भी

अलग अलग रूप से वे प्रगट होते हैं । प्रत्येक को एक ही साधन लागू नहीं होता । अतः कहा है कि ज्ञान, भक्ति, कर्म, मंत्र, लययोग में से कोई बढ़िया नहीं है । यह ज्ञान पहले का है, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा तू मेरा परम शिष्य है, इससे तुझे यह ज्ञान देता हूँ । अर्थात् तुम भगवान को प्रिय हो जाओ ।

अर्जुन का अधिकार—मैत्री

महाभारत में सोचने जैसी एक बात है । धर्मराजा युधिष्ठिर सत्यवक्ता थे । फिर भी भगवान श्रीकृष्ण ने आत्मज्ञान तो अर्जुन को दिया और अपने विश्वस्वरूप का दर्शन कराया । क्योंकि अर्जुन उनका प्रिय मित्र था । वह प्रिय हो पड़ा था । **तुम केवल सत्य का पालन ही करोगे और उसके साथ अगर भक्ति नहीं होगी तो सत्यपालन का अभिमान आएगा ।** गीतामाता चाबी देती हैं कि भगवान का भक्त होना हो तो भगवान के प्रिय बन जाओ। प्रभु को प्रिय होने के लिए संसार मिला है । हम सुखी हो जाँय उसकी अपेक्षा हमारे द्वारा दूसरे कैसे सुखी हो जाँय ऐसा विचार करो । भगवान के मार्ग पर जाना हो तो ममतारहित और अनासक्तभाव से बरतकर सभी को प्रिय होंगे तो भगवान के प्रिय होंगे । हम भगवान के स्मरण के साथ इस तरह बरतने की धारणा रखेंगे तो ही भगवान की मदद मिला करेगी ।

भगवान का पता

भगवान आधारहीन नहीं लटकता । वह तो हमारे दिल में पड़ा है । उसे बुलाने का हमें ज्ञानभान नहीं है । आज तो ऐसा चला है कि हम केवल हमारा ही सोचते हैं । भले ही तुम आठ

प्रहर भगवान का नाम लो, जीवन में भावना टिकाये बिना कुछ नहीं होगा । हमें जो कुछ संपत्ति मिली है, वह हमारे अकेले के लिए नहीं है। शरीर संपत्ति मिली हो तो वह दूसरे को तंग करने के लिए नहीं है, किन्तु दूसरे को मदद करने के लिए मिली है। पहले हमारा समाज सुखी था, क्योंकि लोग भगवान का विचार करके चलनेवाले थे । आज कोई उसका विचार नहीं करता। समाज कहाँ जाकर अटकेगा उसका किसी को पता नहीं है ।

कठिन काल में कैसे बचेंगे ?

इस प्रपंचकाल से बचने के लिए साधन ज्ञानभक्तिपूर्वक का भगवान का स्मरण है । उससे भावना प्रगट होगी, रागद्वेष फीके करने का करेंगे तो काल हमें तंग नहीं करेगा । महाभारत का युद्ध वह कठिन काल था । अर्जुन को वह बाधारूप था। उसे बेचैनी भी हुई थी, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण को रथ सौंपा। उन्होंने रागद्वेष फीके करने को कहा। कठिन काल आता है, तब लोग दान करते हैं और अनुष्ठान करते हैं । आप अनुष्ठान करने रागद्वेष फीके करो । प्रथम दूसरे का अच्छा सोचो तो कठिन समय बाधा नहीं दे सकेगा । दूसरे को बाधा देगा, किन्तु आपको नहीं देगा । सभी ग्रहों की युति होने की होगी तब होगी । अबे, तुम क्यों बेचैन होते हो ? तुम्हारी पापवृत्ति घबराती है । ऐसा लगे तो दूसरे को सुख देने का विचार करें । संसारव्यवहार में भी यह आवश्यक है।

द्वन्द्व का हेतु

अब मूल बात पर आयें । हम प्रकृति से घिरे हुए हैं । सुख–दुःख, लाभ–गैरलाभ, नीति–अनीति, प्रकाश–अंधकार जैसे

द्वन्द्व साथ-साथ ही हैं । यह रचना हेतुपूर्वक की है । यों ये आमनेसामने होने से आघात-प्रत्याघात और संघर्षण होता है, इससे समझ प्रगट होती है । ऐसे संघर्षण होने से उसमें डूब जाने से इस हेतु के विषय में कोई सोचता नहीं । कोई भूमिकावाला जीव ही वैसा सोचता है । मनुष्य को सुख और लाभ पसंद है । चेतन तो आनंद-स्वरूप है । इससे आनंद तो पसंद ही है। अतः कैसे आनंद प्रगट हो यह सोचो ।

आये ऐसे जाएँगे ?

मनुष्य जब सुख में होता है, तब दुःख नहीं होता ऐसा नहीं होता । घर में मोटर-गाड़ी, नौकर-चाकर, अच्छा आरोग्य हो फिर भी—सब भोगते हुए भी—घर की महिलाएँ दुःखी होती हैं । उसे उसका त्रास होता है । जीवननिर्वाह की प्रवृत्ति में अनेक प्रकार के त्रास होते हैं । मनुष्य तो ऐसा सोचता है कि सतत एक-सा सुख भोगे ऐसा हो तो अच्छा । भगवान बुद्ध भी इसी कारण से घर छोड़ गये थे । इसलिए भगवान ने कृपा करके इस द्वन्द्व की रचना की है । लड़कों के लिए कोठरी में या जमीन में इतने पैसे गाड़ दिये, किन्तु मरते पहले कहने को भूल गये । लडके भी सोचते हैं कि कमाते बहुत, किन्तु हाथ में कुछ नहीं आता । हमारे पास सब कुछ है, किन्तु हाथ में कुछ नहीं आता । क्योंकि तुम जीवदशा की वृत्ति में सतत लगे रहते हो । अतः भावना तो पड़ी ही है, किन्तु उसका उठाव नहीं हो सकता । इस द्वन्द्व की रचना का हेतु है, उसे सार्थक करें, अन्यथा आये ऐसे ही जाएँगे और फिर गये ऐसे वापस आएँगे। इसलिए चेतन के प्रति अभिमुखता जागे उसके लिए प्रयत्न करें ।

मेरे गुरुमहाराज पू. बालयोगीजी एलिसब्रीज से टाउनहोल (अहमदाबाद, गुजरात) की ओर जाते दायें हाथ पर रहते थे । उनकी जांघ में कीड़े पड़े थे । वे कीड़े अगर बाहर गिर जाय तो उनको पकड़कर फिर जांघ के घाव में रख देते । उस समय मुझे इस बाबत का कुछ अनुभव नहीं था, किन्तु भगवान की कृपा से उन्होंने मुझे बुला लिया । उनकी ऐसी स्थिति देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था । दुःख होते हुए भी दुःख नहीं है ऐसा हो, उसके बारे में मुझे बहुत दिन तक विचार आया था कि ऐसी स्थिति बन सके सही ?

चेतन का स्वभाव—उसका लक्षण आनंद है । किसी भी स्थिति में हों एकमात्र सुख का अनुभव हुआ करे उस प्रकार की समझ इस द्वन्द्व की रचना से ही प्रगट हो सके और वह मनुष्ययोनि में ही संभव है ।

दिनांक १२-१२-१९६१

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

६. चेतननिष्ठ का गूढ़ कार्य

शरीर की स्थूल-सूक्ष्म रचना

हमारे शरीर में हड्डी, स्नायु, आँत, फेफड़े, हृदय, ज्ञानतंतु इत्यादि कहाँ आये हैं और उसका क्या कार्य है, उसका ज्ञान देनेवाले शास्त्र को अंग्रेजी में 'सायन्स ऑफ एनेटोमी' कहते हैं। एलोपथी उपचार-पद्धति से पढ़नेवाले को इसका अध्ययन करना ही पड़ता है । आयुर्वेद में भी शरीररचना का शास्त्र तो था, किन्तु उसका अध्ययन उतना विकसित नहीं हुआ था । निष्णात कहते भी हैं कि हमारे यहाँ चीरफाड़ भी थी । चीरफाड़ के औजार भी थे । यह सब बात ठीक है । केवल इतना ही समझना है कि शरीररचना के संबंध में जानकारी के लिए जो विकास हुआ वह बाह्य है, उसी तरह अंदर की सूक्ष्म रचना के बारे में हमारे ऋषिमुनिओं ने विचार किया है ।

सूक्ष्म शरीर की रचना

शरीर की स्थूल रचना को प्रेरणा देनेवाला कोई आधार तो होना चाहिये ऐसा मानकर सूक्ष्म का विचार हुआ । धन्वन्तरि मुनिने वनस्पति का सूक्ष्म पृथक्करण किया है । उन्होंने प्रत्येक वनस्पति के साथ तादात्म्य अनुभव किया । चेतन का यह लक्षण है । वह चेतन के साथ चेतनरूप से और जड़ के साथ जड़रूप से रहता है । धन्वन्तरि ने चेतन के अनुभव द्वारा वनस्पति के गुणधर्म जान लिये । उसी तरह शरीररचना के आधाररूप रहे सूक्ष्म तत्त्व को जानने ऋषिमुनिओं ने सूक्ष्म शरीर

के साथ तादात्म्य साधा । उन्होंने जो प्रत्यक्ष अनुभव किया उसके आधार पर उन्होंने बुद्धि द्वारा स्वीकार किया है कि सूक्ष्म शरीर है और उसके भी अलग-अलग भाग है । स्थूल शरीर पाँच तत्त्वों का बना है । पृथ्वी, जल, वायु, तेज (अग्नि) और आकाश; जबकि कितने ही सूक्ष्म शरीर तीन तत्त्वों के बने हुए होते हैं और बहुत थोड़े आकाशतत्त्व के बने हुए होते हैं, ऐसे शरीर का संबंध पूरे ब्रह्मांड के साथ होता है ।

मेरुदंड और सूक्ष्म चक्र

हमारे ऋषिमुनि 'सायन्स ओफ एनेटोमी' से भी बहुत आगे गए हैं । हमारे शरीर में ज्ञानतंतुओं का राजा मेरुदंड है। प्रत्येक ज्ञानतंतु को वह हुक्म देता है । सूक्ष्म शरीर में रहे हुए छः चक्रों के आधार पर वह काम करता है । इन सूक्ष्म चक्रों के बारे में शरीररचना-शास्त्र *(एनेटोमी)* में कुछ भी नहीं बताया है । कोई बड़ा बंगला बनाना हो, उसके पहले उसका नमूना बनाना पड़ता है, ऐसा यह स्थूल का नमूना सूक्ष्म शरीर है । उसमें अलग ही शक्तियाँ है । हिंमत, पराक्रम, साहस, बुद्धि, उत्साह, उमंग, सहनशीलता, भाव इत्यादि का उद्‌भव अलग-अलग स्थान से होता है । इन सब गुणों का उदय इन छः चक्रों द्वारा होता है, किन्तु मुख्य काम तो मेरुदंड का है । मेरुदंड का एकदम आखिरी मनका गुदा के पास है, वहाँ पहला चक्र होता है, उससे ऊपर, और उससे भी ऊपर ऐसे दूसरे चक्र हैं । एकदम ऊपर अंतिम छठ्ठा चक्र ब्रह्मरंध्र में है । इन छः चक्रों को गतिमान करके सूक्ष्म में प्रवर्तन होने की विधि—विद्या भी है। किन्तु यह विद्या समय पाकर लुप्त होती गई फिर भी वह विद्या गुप्त रीति से—बीज रूप से है और गुरुओं की परंपरा द्वारा टिकी है।

उन चक्रों की विद्या का सूक्ष्म में व्यक्त और अव्यक्त भाव है। ऐसे अव्यक्त भाव की स्थिति में या ऐसे अव्यक्त भाव से या शब्द से उस विद्या का कोई जानकार अन्य को उसमें गति कराता है ।

चक्रों की गति कैसे ?

अब इस गति का स्थूल शरीर में उठाव नहीं होता तो फिर सूक्ष्म में जो पड़ा है, उसका उठाव कब होगा ? जब उस भाव का अनुसंधान रहा करे, जब उसमें सातत्य प्रगट होता है। इस प्रकार के अनुसंधान के अध्ययन का अभाव होने से, यानी सातत्य नहीं रह पाता । अगर उसका सातत्य रहे तो उसका विकास इतना सारा हो कि मानो हम हिमालय पर्वत कूदते हों ऐसा हमें लगता है । आज भी इस प्रकार की विद्या जीवित है ।

हमारी तामस स्थिति

पश्चिम में *एनेटोमी* का जितना गहरा अभ्यास हुआ है, उतना सूक्ष्म शरीर का विचार नहीं हुआ है, किन्तु **वे लोग सूक्ष्म शरीर के अभ्यास में गहरे उतरेंगे, तब हमारे से आगे जाएँगे और चेतन का अनुभव भी कदाचित् शीघ्र करेंगे।** उन लोग में ऐसा गुण है कि जिसमें वे लग जाते हैं, उसका हल लाकर ही रहते और उसका शास्त्र रचते हैं । **ऐसे उत्साह, उमंग, अखंड चिपके रहने की ताकत हमारे समाज में नहीं है । हमारा समाज तो घोर तामस में पड़ा है ।**

यह विद्या किसको मिले ?

ऋषिमुनिओं द्वारा दी हुई विद्या के बीज हमारे में हैं, किन्तु उसके लिए हम सोचते नहीं । उसे जानने की हम में जिज्ञासा

नहीं है । हम तामस में पड़े हुए हैं । अर्थात् स्थितिस्थापक हैं, इसलिए हम आगे नहीं बढ़ पाते । हम हमारे पूर्वजों का गौरव किया करें, किन्तु उस से वर्तमान में कुछ लाभ नहीं मिलता। मेरे पिता-दादा करोडपति थे, किन्तु आज तो मैं गरीब हूँ । अतः वे पिता-दादा के पास से हमें कुछ आधार नहीं मिलता । हमारी आगे बढ़ी हुई संस्कृति के पास प्रेरणा या उत्साह मिले, किन्तु जब हमारे में सच्ची जिज्ञासा प्रगट हुई हो और ज्वालामुखी जैसी धधकती तमन्ना प्रगट हुई हो, तभी ऐसी हकीकत खोजने से मिल जाय, उसका कोई जानकार भी मिल जाय । हमारी जिज्ञासा की भूमिका उसे आकर्षित किये बिना नहीं रहती । चेतन का गुणधर्म ऐसा है कि वह उसे ढूंढ़ निकाले ।

महापुण्य योग

किसीकी भूमिका प्रगट न हुई हो फिर भी उस विद्या का जानकार मिल सके । क्योंकि चेतननिष्ठ का प्रारब्धकर्म ऐसे जीवों के साथ अनेक जन्मों में जन्मा हुआ होता है । इसलिए उस प्रारब्धकर्म के योग से ऐसे जीवों को उनके प्रति आकर्षित करके उनका संबंध करा देता है ।

चेतननिष्ठ का वर्तन

चेतन सत में भी है और असत में भी है । अतः चेतन में निष्ठा पाये हुए ऐसे महात्माओं का मनुष्यशरीर होने से वे हमारे जैसे ही बरतते हैं । वे प्रेम भी करें, क्रोध भी करें । स्पृहा-निःस्पृहा भी करें । लोगों को तो वे प्रेम करें, स्पृहा करें तो ऐसी उसकी दशा पसंद आए । हमने कहा कि आश्रम में साँझ को नहीं आना, फिर कोई भी हो । किन्तु अमुक सेठ को यह बात पसंद नहीं आये । ऐसा जीव कठोर भी हो । उसे किसी

की परवा भी न हो। ऐसे समय पर हम उसके बारे में लस्टम-पस्टम सोचें यह ठीक नहीं है । **उसका कारण हमारे में अनुशासन नहीं है । हमें अनुशासन रखना चाहिए ।**

समूह में आने वाले को मना

यहाँ हमें निजी कामकाज हो या नहीं ? हम आश्रम लेकर बैठे हैं । एक मिल के मैनेजर तो रात्रि को आये । वे कहते हैं कि संत के दर्शन का समय क्या है ? 'मैंने तो कहा, 'मैं कोई महात्मा नहीं हूँ। हमारे यहाँ ऐसा नहीं चलता ।' **यहाँ का वातावरण शांति और प्रसन्नतावाला रहे ऐसा हम चाहते हैं। कितने ही लोग तो केवल टहलने निकले थे, वे समूह में आने लगे और अशांति फैलाते थे । हमने तो उन लोगों को प्रवेश दिया ही नहीं ।** अतः मैं तो स्पष्ट कहता हूँ कि मैं जब प्रेम करता हूँ, तब तो सभी को पसंद आये । किन्तु जब कठोर बनूं, तब किसी को भी पसंद नहीं । तो फिर मेरे साथ संबंध मत रखो । **ऐसे समय दिल खराब करें उनके लिए यह चेतावनी है ।** मेरे गुरुमहाराज का हुक्म है कि स्पष्ट कह देना । मुझे तो आप में भावना प्रगट करनी है ।

समझना कठिन है

इसलिए तो चेतननिष्ठ को पहचानना दुर्लभ है । कोई पल में ऐसा जीव किसी जीव के साथ एकाग्रता में हो, तब वह जीव जैसी दशा में हो वैसी रीति से वह बरतता है । उस समय कुछ प्रसंग बनें तो दूसरे जीव पर वह गुस्सा भी कर दे । तब लोग कहते हैं कि यह तो गलत क्रोध करता है । हकीकत किस तरह बनती है, उसे मैं भाषा द्वारा समझा सकता हूँ, किन्तु वह समझना कठिन है ।

स्वयं को समझो

ऐसे महात्माओं के साथ किसी प्रारब्धयोग से मिलना हो जाय तो वे कहें वैसा करें । उनको समझना कठिन हैं । इसलिए उनको समझने का छोड़ दें । जब तक हम स्वयं को ही समझे नहीं हैं, तब तक कुछ समझ में न आये । इसलिए स्वयं को ही समझने का प्रयत्न करें । हम अपने को समझेंगे तो कदाचित् ऐसा हो सकेगा ।

चेतननिष्ठ का अंतर्यामीत्व

नडियाद (गुजरात) में मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा था कि दूसरे को पहचानने की मेहनत मत करना । आपश्रीने मुझे दीक्षित किया था । एक दिन रास्ते में जाते आदमी को पत्थर मारने कहा । गुरुमहाराज का हुक्म का तो पालन करना ही चाहिए । पत्थर मारा किन्तु उस तरीके से मारा कि पत्थर उस आदमी से दो-तीन फूट आगे गिरा और पत्थर उसे लगा नहीं । फिर भी वह तो मुझे गाली देने लगा । मैंने तो कह दिया कि इन गुरुमहाराज को कहो । उन्होंने मुझे कहा है। अतः वह तो दौड़कर ऊपर गया और गुरुमहाराज के पैर में पड़कर रोने लगा। मैं उसके पीछे गया था, इससे देखा कि आँख में से सतत आँसू बहते ही जाते हैं । उसने रोते-रोते कहा कि आज तो दुष्ट में दुष्ट कर्म करने जा रहा था । उसका वर्णन भी न हो सके। आपने मेरे पर बहुत कृपा की ।'' यह सुना कि तब गुरुमहाराज के हुक्म का हार्द मैं समझा । ऐसा हुक्म बुद्धि से न सोचकर प्रेमभक्ति से पालन करना यह धर्म है । किन्तु जब तक भावना का सातत्य प्रगट नहीं होता, तब तक बुद्धि शोर मचाती है ।

संतराम महाराज का मंदिर

नडियाद में संतराम महाराज का बहुत बड़ा मंदिर है । वे एकसो पैंतीस वर्ष पहले हो गये हैं । अवधूत नग्नदशा में जंगल में पड़े रहते थे । अभी जहाँ मंदिर है, उस जगह में एक भाई उन्हें लाये । उस समय वहाँ बबूल का छोटा जंगल था । उसमें वे पड़े रहते थे । कोई भोजन लाये तो भी वे फेंक देते । फिर तो मंदिर हुआ । १९३२ में उस मंदिर को सौ वर्ष हुए। महाराज के भक्तों में अनेक हरिजन थे । मंदिर की शताब्दी मनाई तब बारह-तेरह लाख लोग थे । उनमें लगभग पच्चीस हजार हरिजन थे । उनकी व्यवस्था करने के लिए मेरी नियुक्ति हुई थी । वहाँ हरिजनों के समक्ष ख्रिस्ती पादरी व्याख्यान देने आते थे। मैं उनको मिला और कहा कि 'यह ठीक नहीं, हिन्दुओं का उत्सव है, वहाँ आप व्याख्यान करोगे तो टंटा होगा।' वे तो रामकृष्ण के विरुद्ध भी बोलते थे । वे माने नहीं, इससे मैंने कलेक्टर को अर्जी की । पुलिस का दल आया । उन्होंने सूचना दी कि दूर जाकर व्याख्यान करें । मैंने संतराम महाराज को बात की । वे तो बाहर निकलते ही नहीं थे । केवल माघ शुक्ल पूर्णिमा के दिन बाहर निकलते और मिसरी बाँटते।

उस समय नामी मंडलेश्वर भी पधारे थे । उनको कहा कि 'बाहर आकर वे प्रवचन करें' किन्तु कुछ हर्ज लाकर बाहर आने का इनकार करते । मैंने दलील की कि 'नरसिंह, मीरां, कबीर साहब, ज्ञानदेव इत्यादि तो हरिजनों के पास भी गये थे। व्याख्यान देने में आपको क्या होता है ? हिन्दूधर्म को माननेवाले इतने सारे हरिजन हैं । गायमाता को, तुलसीमाता को पूजते हैं । आँगन को स्वच्छ रखते हैं । उनको आप दर्शन भी न

दे सको ? वे आप के दर्शन चाहते हैं । अब आप नहीं मानोगे तो मैं सभी को कहूँगा तो आप पर हल्ला करेंगे । बहुत प्रयत्न के बाद दर्शन देने माने । किन्तु दर्शन किस तरह दें उसका हल मेरे पास माँगा ।

मैंने कहा : 'आप सब बाहर आकर एक कतार में खड़े रहो । सब एक के बाद एक कतार में आकर दर्शन कर जाएँगे ।'

यह कहकर मुझे किसी की अवगणना नहीं करनी है । किन्तु अनुभवी पुरुष में भी ग्रंथि या भेद हो नहीं, इसलिए सभी महात्मा अनुभवी हो ऐसा नहीं होता । अनुभवी तो कोई भी एक ही हो । तात्पर्य यह है कि अनुभवी महात्मा को समझना बहुत दुर्लभ । आप संसार के किसी व्यक्ति को परख नहीं सकते तो ऐसे को किस तरह परखेंगे ?

इससे जहाँ हमारी भावना विकसित होती हो, प्रसन्नता लगती हो वहाँ जावें । प्रत्येक विभूति के दर्शन प्रेमभाव से करें, किन्तु एक पर एकाग्र हो सके तो अनेक का संसर्ग हो सके। इसलिए **इस आश्रम के प्रति का भाव आपकी गरज से, आपके लाभ के लिए रखें । आपको गरज लगी होगी तो बुरा नहीं लगेगा। गरज लगी होगी तो आओगे, अन्यथा मत आओ ।**

दिनांक १९-१२-१९६१

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

७. खोजो तो मिलेगा

भूलभूलैया में

हमारा जीवन बहुत संकुल (complex) है । उसमें अनेक प्रकार की आशा, इच्छा, कामना, लोभ, मोह इत्यादि की तरंगें हैं । इसलिए जीवन में मनुष्य को शांति होनी कठिन है । फिर भी हम टिक रहे हैं । क्योंकि जीवन में रस है, आनंद भी है। उसका कारण हमारे में चेतन है । **आनंद और रस यह चेतन के लक्षण हैं ।** चेतन होते हुए भी हम ऐसी भूलभूलैया में पड़े हैं कि हमें उसके अस्तित्व का भान नहीं जागता ।

तादात्म्य और साक्षीपन ये चेतन के गुणधर्म हैं । हम आशा, कामना के साथ तादात्म्य होते हैं । अतः हमारे में साक्षीपन का गुण प्रगट नहीं होता । इसलिए हमें चेतन की उपस्थिति का पता नहीं लग पाता। रस, आनंद, तादात्म्य गुण हमारे में प्रगट हुए हैं, किन्तु अन्य तटस्थता और साक्षीपन के गुण प्रगट नहीं हुये हैं । उनके बिना हमारा शरीर टिक भी न सकेगा । इसलिए चेतन कब प्रकाशमान प्रगट हो सके और हम उसे ढूँढ़ निकालें ऐसी हमें तत्परता लगनी चाहिये ।

तत्परता का प्रमाण

मेरा दृष्टांत दूँ । भगवान की कृपा से १९२२ में मेरा इस दिशा में मुख हुआ । मेरे गुरुमहाराज पू. बालयोगीजी ने मुझे दीक्षित किया, तब से मैं किसी दिन घर में नहीं सोया । बाहर साधना किया करता । किन्तु एक समय गुरुमहाराज के पास गये बिना साधना में आगे बढ़ना मुश्किल था । क्योंकि मेरी एक

समस्या का हल मिलता न था । उस समय गुरुमहाराज के पास जाने के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे । किसीके पास माँगना पसंद नहीं। किसीके पास माँगूँ तो उसे मेरे हेतु में श्रद्धा हो या न भी हो । किन्तु मुझे तो गुरुमहाराज के पास जानेकी तत्परता लगी थी । ऐसे प्रकार की तत्परता का लक्षण यह कि वह हमें तुरंत उपाय बताएँ । नडियाद में अमृतभाई नाम के एक सज्जन 'अमृतबिंदु' नाम की दवा तैयार करके बिक्री करते थे। १९२७ के वर्ष की यह बात है । तब कुंभमेला था और कुंभमेला यह साधुओं का मायका । मैंने अमृतभाई को पूछा कि 'आप मुझे मदद कर सकोगे ?' और सब बात मैंने उनको बताई । उन्होंने पूछा, 'वहाँ जाकर तू मेरा क्या काम करेगा ?' मैंने कहा, आप अंग्रेजी और हिन्दी में २५-३० हजार विज्ञापन के हेन्डबिल छपाकर दीजिए, मैं वहाँ बाँटूँगा ।' उनको यह बात पसंद आई। उन्होंने मुझे जाने-आने के लिए किराया दिया और भोजन-भत्ता भी देने लगे, किन्तु मैंने मना किया । क्योंकि वहाँ साधु-संतों के लिए अनेक अन्नक्षेत्र होते हैं । वहाँ से भोजन मिल सकता है ।

जेब कटा

मैं तो विज्ञापन के कागज लेकर गया, किन्तु रेलगाड़ी में किसीने जेब काट लिया, इसलिए टिकट और वापस लौटने के पैसे भी गये । स्टेशन पर टिकटबाबू ने पकड़ा । मैंने उसे समझाया किन्तु नहीं समझे । स्टेशन मास्टर के पास ले गये। ऐसे दो-तीन घंटा रुकना हुआ । किन्तु अंत में स्टेशन मास्टर के कहने से मुझे जाने दिया । इतने बड़े ठिकाने में कहाँ जाना यह प्रश्न था । मेरा भिक्षु अखंडानंद के साथ परिचय था । मैं खोजते-खोजते उनके पास गया । उन्होंने मुझे भोजन कराया। 'मैंने कहा कि मैं मेरे गुरुमहाराज को खोजने आया हूँ ।

खुद ही ढूँढ़ो

उन हेन्डबिलों को बाँटने का काम तो चार-पाँच घंटे में पूरा किया । अब मेरे गुरुमहाराज को कहाँ खोजूँ ? मुझे ऐसा कि वे गंगा किनारे बैठे होंगे । उनको खोजते-खोजते चार दिन हो गये, किन्तु वे मिलते नहीं थे । चौथे दिन मैंने उनको एक सार्वजनिक स्थान पर ही बैठे हुए देखा । मैं तो दौड़कर उनके पैरों में पड़ा । फिर गोद में सिर रखकर बहुत रोया । फिर मैंने उनको कहा ''चार दिन से आपको खोजता हूँ ।' उन्होंने कहा 'मैं भी तुझे चार दिन से देखा करता था ।' मैंने कहा 'आप मुझे देखा करते थे तो बुलाना था न ? वे बोले**:** 'नहीं, तुझे खुद ही खोजना चाहिये ।'

संसार में स्मरण

इसमें से मुझे चाबी मिल गई कि भगवान हमें देखा करते हैं, किन्तु हम उनके सामने न देखा करें तो हमें मदद नहीं मिलती । संसारी लोग प्रवृत्ति में इतने रत रहते हैं कि भगवान साथ होते हुए भी उस विषय में कुछ भान जागता नहीं। ऋषिमुनिओं, साधु-संतों (अनुभविओं) ने देखा कि संसार में लोगों को भगवान के सामने देखना भी ख्याल में आएगा नहीं। इसलिए उन्होंने भगवान का स्मरण करने का सरल उपाय खोज निकाला । भगवान की स्मरणभावना प्रकट होगी तो प्रत्येक समस्या, उलझन का उपाय स्वयं मिलेगा ।

'मेरे में मन पिरो'

लोग कहते हैं कि भक्त लोग भोले होते हैं, किन्तु वह बात गलत है । भगवान ने गीता में कहा है कि 'मैं मेरे भक्त को बुद्धियोग देता हूँ । अंतरसूझ प्रगट न हो यह बात गलत है ।

भावना सब प्रकाश प्रेरित करती है, भावना प्रगट हो उसे अंतरसूझ प्रगट होगी । मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा: 'तेरा मुख जब तक मेरे प्रति फिरे नहीं' और एक-सा मेरे में रहा न करे, एक-सा मनन-चिंतन मेरे में न हो, तब तक कुछ सिद्ध नहीं होगा' गीता में भी यही बात कही है । ''तू मेरा भक्त हो जा।' अर्जुन पहले तो कहता था कि 'युद्ध से वर्णसंकर प्रजा होती हैं । तब भगवान श्रीकृष्णने कहा कि 'कर्म तो करने पड़ेंगे, किन्तु तेरा मन मेरे में पिरो दे और कर्म किए जा ।' **कर्म की अवगणना यह तो भगवान की अवगणना के बराबर है ।** अत: कर्म को यज्ञ का रूपक दिया गया है । मतलब कि यज्ञ की भावना से हम कर्म किया करें । कितनी ही आत्माएँ संसार में रहकर भगवान के साथ रह सकी हैं ।

श्रीमद् राजचंद्र का दृष्टांत

मैंने श्रीमद् राजचंद्र की बात आपको कही होगी । फिर भी उनकी बात करते मैं थकता नहीं। जब साधनाकाल दरमियान ऐसे विचार उठते, उस समय मुझे श्रीमद् राजचंद्र का जीवनवृत्तांत पढ़ने को मिला । उनके जीवन से मुझे बहुत प्रेरणा मिली है। कर्म उत्तम रीति से हो, इतना ही नहीं, किन्तु कर्म इस तरह करें कि उस कर्म से उत्तम परिणाम मिले । ऐसे तो वे बड़े योगी थे । एक समय उनको पता लगा कि अपने पर किसीका लाख रुपये का ऋण है । इससे वे बम्बई जाकर रेवाशंकर जगजीवन की पीढ़ी में व्यापार करने लगे। वहाँ वे आढ़त का और हीरे का धंधा करते । ऐसे करते उन्होंने किसी के साथ सौदा किया। उसका ब्योरा में आपको समझा नहीं सकता ।

अमुक समय पर निश्चित किये हुए दाम अनुसार उस

व्यापारी से हीरे खरीदना ऐसे सौदा का उन्होंने करार किया। अब निश्चित किये दिन पर उस माल के दाम इतने बढ़ गये कि वह व्यापारी करार अनुसार के दाम से माल दे तो भारी नुकसान में आ जाय । इससे वह राजचंद्र के पास आकर गिड़गिड़ाने लगा । श्रीमद् राजचंद्रने करार का कागज मंगवाया और वह कुछ नहीं ऐसा मानकर फाड़ डाला । और कहा : 'चिंता किस लिए करते हो ?' उनकी अनासक्ति देखो । जब बही में एक लाख रुपये जमा हुए कि तुरत ही वे पीढ़ी पर से उतर गये । एक क्षण की देर भी नहीं लगाई । उनकी पत्नी को या सगे को किसी को कुछ दिया नहीं । उन्होंने कहा, 'ये मेरे पैसे नहीं हैं ।'

मनुष्य चेतनावंत

हम में ऐसी प्रचंड भावना प्रगट नहीं हुई है । किन्तु चेतन का यह एक ऐसा प्रदेश है कि उसके सामने देखेंगे और उसे खोजेंगे तो वह मिलेगा ही । भगवान का स्मरण अगर भावनापूर्वक हो तो ऐसा स्मरण चेतन को जाग्रत भी कर सकता है । केवल तोते की तरह नाम रटने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि तोते के और मनुष्य के जीवन में फर्क है । मनुष्य में चेतन होने से मनुष्य स्मरण करे तो वह यंत्रवत् नहीं बन सकता। मशीनरी में निरी जड़ता होती है । जब कि मनुष्य के जीवन में निरी जड़ता नहीं है । मनुष्य में तामस हो, किन्तु जीवन में ऐसी जड़ता नहीं होती । मनुष्य में जितनी चेतन की शक्ति विकसित हुई है, उतनी दूसरे किसी में विकसित नहीं होती। अतः कदाचित् आरंभ में भावना न हो, किन्तु बारह-पंद्रह घंटे स्मरण करें तब प्रगट हो सही ।

भावना के लक्षण

भावना प्रगट हो उसके भी लक्षण हैं । उससे स्फूर्ति आती है । हम धरती पर चलते होते हुए भी धरती से ऊपर अंतरिक्ष में हों ऐसा हमें लगता है । भावना से अंतर्सूझ प्रगट होती है। किसी प्रश्न के बारे में बहुत सोचना नहीं पड़ता । जीवन में आती अनेक प्रकार की समस्याओं का हल भी आसानी से मिल जाता है । उलटे-सीधे तर्क नहीं उठते । कोई पूछते हैं कि भक्ति करने से पैसे कमा सकते हैं ? मैं कहता हूँ कि भक्ति करने से कुशलता आती है । ग्राहक के साथ बरतने की कला भी आएगी । अनेक प्रकार की प्रेरणाएँ जागेगी । **कर्म करते भक्ति प्रगट होगी तो कर्म की कुशलता आएगी ।** इतना ही नहीं किन्तु कर्म में हमारी दृष्टि समतायुक्त, तटस्थतायुक्त होगी । किसी से लेपायमान नहीं होगें । हेतु का भान भी टिकेगा । हमें ग्राहक के आने का प्रयोजन का, उसके स्वभाव-प्रकृति का भी दर्शन हो जाएगा । भावना से काम करने की कला भी हमें प्राप्त होती है । सामान्य मनुष्य काम करे उसकी अपेक्षा अनेकगुना काम हो सकता है । यह मेरे अनुभव की बात है । मैं सुबह चार से रात्रि दस तक काम करता था, किन्तु मुझे थकान नहीं लगती ।

सहाय करने तत्पर 'मोटा'

कुछ लोग मुझे गुरु मानते हैं, किन्तु उनकी इस बात को मैं मानता नहीं हूँ । क्रोध या ऐसा दूसरा कोई भाव प्रगट होता है तो वह पता लगे बिना नहीं रहता, तो फिर भावना प्रगट हुई हो तो इसका पता क्यों न लगे ? हम जिसके साथ जुड़े हुए हों, उसके साथ एक समान रीति से रहते हुए होना चाहिये।

कुछ लोग कहते हैं कि 'गुरु हुए किन्तु मदद नहीं करते।' मैं तो कहता हूँ कि तेरा मन मेरे में नहीं है । मदद लेने की तेरी तैयारी नहीं है । उसके लिए तेरी प्रार्थना नहीं है। तेरे मन में मैं नहीं हूँ, फिर मदद कैसे मिले ?

चेतननिष्ठ के लक्षण

मैं साधु-संतों के साथ बहुत फिरा हूँ । वे चेतन को अनिर्वचनीय कहते हैं । मैं उनको प्रयोग का पूछता तो कहते, 'अबे, प्रयोग किसका ?' वह बात मेरे गले नहीं उतरती । चेतन में निष्ठा पायें उसके भी लक्षण तो होने ही चाहिये । हमारे में चेतना प्रगट होती हो तो पता क्यों न लगेगा ? चेतन प्रगट होने से तो अनेकगुना काम करने की शक्ति प्रगट होती है । चेतन से तेज और नम्रता प्रगट होते हैं । किन्तु वह नम्रता भेड़ जैसी नहीं । उसमें तो सिंह जैसा तेज भी प्रगट होता है । नम्रता के साथ निस्पृहता होती है । चेतननिष्ठ जीव निस्पृह भी हो और स्पृहावाला भी हो । वह प्यार भी करे और गुस्सा भी करे । वह किसी की परवा नहीं करता । उसे हमेशा भगवान का सहारा होता है । वह सदासर्वदा निश्चिंत होता है । जब कहने का होता है, तब स्पष्ट कह देता है । वह अपना व्यवहार प्रयोग से साबित कर दिखाता है कि उसे धन का लोभ नहीं है या किसी भी प्रकार की चिंता नहीं है, किन्तु हमारा दिल अगर प्रेमभक्ति वाला न प्रगट हुआ हो तो वह सब ऊपर से चला जाता है ।

'दो डंडे लगाते'

एक भी बिन्दु ऐसा नहीं है कि जिस में चेतना नहीं है। हमारे शरीर में कितने ही अणुपरमाणु का सदा स्फोट हुआ करता है और शक्ति पैदा हुआ करती है । उस शक्ति द्वारा सभी कर्म

होते रहते हैं । हमारे में अहम्‌बुद्धि भी उस शक्ति द्वारा ही होती है । हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि भगवान की मरजी बिना पत्ता भी नहीं हिलता वह बात सच्ची है । किन्तु हम संसारी लोग अहम् प्रकृति द्वारा घिरे हुए हैं, इसलिए हम ऐसा कहें उसमें दंभ रहा है । वैसा कहनेवाले को अपनी जात का तो भरोसा नहीं होता । फिर 'भगवान की मरजी' ऐसा कहे यह योग्य नहीं है । मेरे गुरुमहाराज तो ऐसा कहने वाले को दो डंडे लगाते।

'भगवान की मरजी' ऐसा बोल सकते हैं ?

संसार में तो सब अपनीअपनी मरजी के अनुसार करते हैं और ऐसे कहते हैं कि 'भगवान की मरजी' । यह तो केवल आश्वासन लेने के लिए रूढ़ि प्रचलित हुई है । हमें समझना चाहिए कि हमारी मरजी अनुसार बरतें तो फिर 'भगवान की मरजी' ऐसा कहें, वह कैसे चलेगा ? आप किसी पीढ़ी में काम करते हों और सेठ की मरजी या नियम अनुसार न चलें तो वह थोड़ी देर भी रखेगा सही ? इसलिए उसका विचार करो।

भगवान का बास कब ?

किन्तु हमारे में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहम् इत्यादि न रहे हों और भगवान की भक्ति पूर्णरूप से प्रगट हुई हो, तब हम 'भगवान की मरजी' ऐसा बोलें तो यह ठीक है । हमें दंभ का सेवन बिलकुल नहीं करना चाहिए । **कोई भी मनुष्य भगवान को न मानता हो फिर भी प्रामाणिक हो तो भगवान का नाम लेनेवाले से वह बढ़िया है ।** भगवान का नाम तो तटस्थ होने, चित्त शुद्ध करने लिए होता है । चित शुद्ध हुए बिना भगवान का बास हमारे में नहीं होता ।

'सत्संग की महिमा बड़ी'

यह सब संसार में कब संभव हो सकता ? इस प्रपंचकाल में सब नहीं बन सकता । इसलिए ऋषिमुनिओं ने खोज निकाला कि भगवान का स्मरण करना और उसमें अविच्छिनता और अखंडता प्रगट हो तो रूपांतर होने की प्रक्रिया प्रगट होगी । परिणाम स्वरूप हम इसी मार्ग पर चले जाएँगे । इसके उपरांत सत्संग की महिमा भी गाई है । मैं खुद पुरुषार्थ करने में बहुत माना करता हूँ । क्योंकि सत्संग की महिमा सही, किन्तु उसमें रेशनल (rational) कितना ? साधु-महात्माओं को पूछूं तो कहते हैं कि उसमें फिर समझने का क्या है ? सत्संग की महिमा भारी। किन्तु मैंने सोचा कि प्रत्येक का मूल होता है । बिना कारण ऐसी बातें नहीं चलती । विचार करते मुझे लगा कि सब मनुष्य भगवान का नाम नहीं ले सकें तो दूसरा साधन तो कहाँ से कर सकेंगे ? किन्तु सत्संग द्वारा शांति और हलकापन का अनुभव तो कर सकते हैं ।

भावना से सत्संग

संसार में भले ही रगड़े हुए हों, तब दस-पंद्रह मिनट के लिए भी चेतन में प्रगट हुए महात्मा के संस्कार हमारी भूमिका में प्रगट हों तो उस समय तक उनकी उच्च प्रकार की 'भूमिका हमारे में प्रवेश करती है और सूक्ष्म में भी वह संस्कार प्रगट होता है और उससे जो उच्च प्रकार की भूमिका होती है, उसका परिणाम भी उत्तम प्रकार का आता है ।

जब ऊर्ध्वजीवन की भावना से और जिज्ञासा से सत्संग करने जाते हैं तो चेतन में निष्ठा पाये हुए उस महात्मा के द्वारा हमारा बहुत कल्याण होता है । इस तरह उनके संस्कार उदय

होते हों तो जीवन में ऊँचे प्रगट होने की बहुत संभावना है । हल समझने की वृत्ति हो तो ऐसा आत्मा उपाय बताता है और उनकी मदद भी मिलती हैं । क्योंकि वह तटस्थ होता है, किन्तु ऐसी भावना से सत्संग करने वाले कम होते हैं । यह मेरे अनुभव की बात है, **इसलिए आपको कहता हूँ कि यहाँ आश्रम में बेकार मत आना । जिज्ञासा से और भावना की भूमिका से आया करना । उससे कल्याण होता है ।**

चेतन को खोजने की क्या आवश्यकता ?

नडियाद में एक डॉक्टर दंपति है । प्रतिदिन नियमित साढ़े छ बजे आश्रम में आते हैं । उन्होंने प्रश्न किया कि 'चेतन को खोजने की क्या आवश्यकता है ? यह सब चेतन ही है न ? बोलते हैं, स्वाद करते हैं, काम करते हैं, यह सब चेतन के कारण ही है न ? तो फिर यह खोजने की और दूसरी सब धमाल क्या ?'

मैंने उनको पूछा, 'संसारव्यवहार में' घर्षण, पीड़ा, वेदना, दुःख, टकराव होते हैं कि नहीं ? फिर भी सुख ही पसंद है न ? सुख अनंतकाल तक रहे ऐसा मिले तो पसंद या नापसंद ? इसलिए अनंत सुख का अनुभव हो, कितना भी दुःख होते हुए भी ऐसी स्थिति प्रगट हो कि सुख का अनुभव जाय ही नहीं ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए खोजें । अस्खलित सुख के अनुभव के लिए महात्माओं को काल बाधारूप हुआ । उस काल को संक्षिप्त करने साधनों की खोज की । आज भी उस प्रकार की साधना है, किन्तु ऐसी साधना करने के लिए किसीकी तैयारी नहीं है । क्योंकि उसके पहले पूर्ण चित्तशुद्धि होनी चाहिये ।

जीवन फना कर सकोगे ?

हमारे में क्रोधादि अनंतकाल से हैं । उसका impact है, वह जाना चाहिये । अनंतकाल तक शांति और सुख टिके उसके लिए चेतन का विचार आया । ऐसा मैंने डॉक्तर दंपति को समझाया । यह अनुभव का विचार है । तुक्का नहीं है, जिसे अपना जीवन फना करने की तैयारी हो, वही उसे पा सकता है । मैंने उनको पूछा : ''सब ऐसा कर सकेंगे ?'' और मुझे अनुभव से लगा इसलिए यह आश्रम किया है ।

मौन-एकांत में कारणशरीर को स्पर्श ?

यहाँ मौनमंदिर में बैठो तो भावना में ऊपर उठते हैं । जो मंथन करेगा उसे संस्कार पड़ेंगे, वे कहाँ जायेंगे ? अंदर बैठने वाले को ऐसे अनुभव होते हैं । तर्क की दृष्टि से प्रकाश का अनुभव होता है । कोई लाख रुपया दे, उसकी अपेक्षा यह प्रकाश का अनुभव हो वह विशेष है । क्योंकि उसके संस्कार आखिर कारणशरीर को स्पर्श करते हैं ।

यह सब तो समझ में आये

सूक्ष्मशरीर को आकार है । किन्तु उसे चौड़ाई नहीं है, लेकिन कारणशरीर तो आकार बिना का है । सकल ब्रह्मांड के साथ वह संलग्न है । यह सब अनुभव की हकीकत है । चेतननिष्ठ जीव यहाँ होते हुए भी हजारों मील अनेक स्थानों पर हो सकता है और जा सकता है । मणिलाल नभुभाई द्विवेदी (गुजरात के एक प्रसिद्ध साहित्यकार) ने तो टेलिपथी के प्रयोग से जामनगर में रहते उनके एक मित्र के साथ बात की थी । हमारी बुद्धि प्रकृतिमय बनी हुई है, इसलिए द्वंद्वात्मक है । अगर बुद्धि चेतनमय हो जाय और वैसे प्रगट हो जाय तो सब समझ सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं ।

मौन-एकांत से उच्च गति

ऋषिमुनिओं ने हमें यह संस्कृति दी है, उसके पीछे जीवन का रहस्य है । उनको अनुभव द्वारा जो अमृत मिला, वह उन्होंने दिया । हम उनके साथ संबंध में आयें तो उनका उत्तराधिकार हमें मिलेगा । उनके संबंध में आने से सब के प्रति सद्भाव प्रगट होगा, नापसंदगी प्रगट न हो । मन अवगुण देखा करे तो झटका मारकर दूर करें तो हमारा विकास होगा । ऋषिमुनिओं ने तो देखा कि मनुष्य अपने आप ऐसा न कर सकेगा । इसलिए भगवान का स्मरण यह एक ही रामबाण उपाय है । समुद्र की लहर से लकड़ी इधर से उधर टकराय ऐसी हमारी स्थिति में भगवान का नामस्मरण करें और अगर उसमें सातत्य प्रगट हो तो वह भावना में प्रगट होता है। गुरुमहाराज के हुक्म से इस मौनएकांत मंदिर में अगर व्यक्ति बैठेगा और मथन करेगा तो उसके संस्कार उसके सूक्ष्म शरीर पर पड़ते हैं और ऐसे सूक्ष्म संस्कार जब उदय होते हैं, तब ऐसे जीव ऊँची गति में जन्म लेंगे यह हकीकत है ।

दिनांक : १३-७-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

८. मौनमंदिर में धर्मसंस्कार

प्रचार नहीं

मौनमंदिर में बैठाने की नीति के साथ इस आश्रम की स्थापना हुई, तब सुरत में भी सब को इसका पता न था । मेरी आप सब को विनती है कि उसके लिए प्रचार करने की जरूरत नहीं है । जो कुछ अपने आप बने वह उत्तम है । जिसके साथ प्रारब्धयोग जुड़ा हुआ है, वह किसी न किसी तरह यहाँ आएगा, यह निश्चित हकीकत है । मेरे विषय में या आश्रम के विषय में प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि प्रचार में अत्युक्ति होने से प्राय: हकीकत का खून हो जाता है। यहाँ के निवासिओं को भी विनती है कि भावना से या मनोभाव से प्रेरित होकर कुछ बात नहीं करनी है । उसमें शुभ के बदले अशुभ होने की अधिक संभावना है ।

सद्‌भाव रखो

जब आश्रम के बारे में सब को पता न था, तब पहले जो कुटुम्ब जुड़े हुए थे, उनमें से कई सदस्यों ने मौन लेना रखा था । अब तो नये-नये संबंध होते हैं, अत: नये को मौन में बैठने का मौका मिले यह देखने का है । जिन्हें मौन में बैठने न मिले, उन्हें आश्रम प्रति सद्‌भाव-प्रेम रखना चाहिये । आश्रम के हित का विचार करना चाहिये । जितने नये व्यक्ति लाभ लें वह उत्तम है । मेरा शरीर नडियाद का होते हुए भी नडियाद के लोगों की अपेक्षा वहाँ बाहर के ही आते हैं ।

सद्भाव से सोचें

जीवनविकास के लिए सानुकूलता वाली ऐसी सुविधा अन्य कोई स्थान पर नहीं है । ऐसी मिली हुई सरलता जीवन के लिए हितकारी है, ऐसा जो जीव को लगता हो, उसे ऐसी प्रवृत्ति को सहायता करना यह उसका धर्म है । ऐसा जीव किसी न किसी रीति से सहायक हो पड़े यह योग्य है । हमारी बनाई नीति के लिए भले खीज चढ़े, किन्तु आप अच्छे भाव से विचार करें ।

यह धर्म नहीं है

हमारे समाज में धर्म के बारे में सच्ची समझ नहीं प्रगट हुई लगती है । धर्म यानी क्या ? दो माला करना, घी का दीपक करना, देवदर्शन करने जाना, कथा वार्ता सुननी, कोई महात्मा पधारे हों तो उनको देखने जाना, भागवत सप्ताह हो तो कथा सुनना – इतनी हकीकत में धर्म की समझ मानी गई है। मेरी दृष्टि से इसे धर्म नहीं कह सकते । यह तो अज्ञान है । मुझे खुद को गुरुकृपा से समझ में आया है । वह कहता हूँ।

सच्चा धर्म

व्यवहार में मिले संबंधों में, प्रवृत्ति में, कार्यो में रागद्वेष फीके करें । हमारे स्वयं के विकास के लिए किसी के प्रति बैर न हो, उल्लास प्रगट हो ऐसी सद्भावना प्रगट हो और ऐसा करके कैसे भी इस संसार में से हमारी आशा, इच्छा, तृष्णा, लोलुपता कम हो और वह करने अंतर का बल जगाने के लिए भगवान के स्मरण का सहारा लें और ऐसा करके जीवन की उन्नति हो उसे सच्चा धर्म कहते हैं । मिले हुए जीवों के साथ के संबंध

में, बातचीत में तटस्थता, समता विकसित करें । प्रपंच से नहीं बरतें । अपना स्वार्थ न रखें । किसी का भला कैसे हो, किसी का दिल नाराज न हो, किसीका अहित न हो ऐसे पलपल बरते उसका नाम धर्म । धर्म की यह आचरण विधि है । ऐसे आचरण के साथ भगवान का नाम लें तो जीवन का उठाव शीघ्र होता है । अच्छे फल के लिए अच्छी जमीन चाहिए। पत्थरीली जमीन में आम के पेड़ नहीं होते। उसी तरह जीवन के उठाव के लिए ज्ञानभक्तियुक्त जीवन की विशेष आवश्यकता है । जीवन में स्वार्थ साधने का करें, प्रपंच से बरतें और भगवान की माला करें और उसमें बहुत समय बितायें उससे कल्याण नहीं हो सकता ।

सजग बनो

सुबह में स्मरण करें और शाम को करें । सुबह में पूजा-पाठ और नैवेद्य करें उतने से काम नहीं चलेगा । जीवननिर्वाह की प्रवृत्ति के कारण समय न मिले यह समझ सकते हैं, किन्तु उससे उठाव नहीं आएगा । हम हमारी प्रतिदिन की प्रवृत्ति में सजग न बनें तो जीवन में आधा घंटा सुबह-शाम नामस्मरण से कुछ काम नहीं चलेगा ।

देशभर में बेजोड़

मेरे गुरुमहाराजने यह सब सिखाया था । वे तो कहते थे कि 'यह आयुष्य तो टूट जाय ऐसे मोती के समान है । किन्तु लोगों को यह दिखता नहीं । लोग तो अंधेरे में हैं । इसलिए ऐसा कुछ कर ।' ये मौनमंदिर इसलिए बनाये कि लोग अंदर अठारह घंटे लगातार स्मरण करें, मथन करें । उसके संस्कार

बहुत गहरे पड़ेंगे । अंदर रहोगे उतने समय बाहर की प्रवृत्ति भी बंद पड़ेगी । मेरे गुरुमहाराजने कहा था कि तेरी यह प्रवृत्ति तेरी हस्ती दरमियान नहीं समझेंगे, किन्तु तेरा शरीर नहीं होगा, तब उसकी कीमत समझेंगे । मैं पूरा हिन्दुस्तान घूमा हूँ, किन्तु कहीं एकाग्र होने की सरलता प्रगट हो ऐसा देखा नहीं ।

दंभ से सावधान

कितने ही वर्षों से मेरे साथ रहे हुए जीवों को देखता हूँ कि वे तुच्छ बातों में उलझ जाते हैं । घंटा-दो घंटा भगवान का नाम लो यह तो दंभ है । उससे उठाव नहीं होगा । कामी-क्रोधी हो उसकी गति होती है, किन्तु दंभी की गति नहीं होती, क्योंकि दंभ से ऐसा परदा बनता है कि जिसे नहीं तोड़ सकते। दंभी की क्रिया इतनी सारी गहन है कि उसे दंभ हो फिर भी खुद सच्चाई से चलता है ऐसा वातावरण दंभ पैदा करता है। कामी-क्रोधी को भान जागता है, किन्तु दंभी का परदा टूटता नहीं।

हम प्रतिदिन के व्यवहार में प्रकृति से बरत रहे हैं । 'मैं' और 'मेरा' किया करें और स्मरण करें उसका कुछ अर्थ नहीं । उससे कुछ फायदा नहीं होगा । केवल दंभ बढ़ता है। अतः हम समाज को अधिक दूषित बनाते हैं। इसलिए समझ से सोचें कि किस तरह भगवान के स्मरण का उठाव हो ?

भगवान का आधार

मेरे गुरुमहाराज का हुक्म है कि सच्ची बात कहनी । यहाँ आये, उनको दिल से चाहें । फिर भी कितने ही लोगों के मन नाराज भी हुए हैं, यह हम जानते हैं । हमें तुम्हारी गरज है और नहीं है । किन्तु जीवन के इतने सारे प्रसंग पर से मैं कहता हूँ कि मुझे मदद करनेवाला हजार हाथ वाला मालिक है । मनुष्य तो निमित्तमात्र है ।

सुरत में आया था, तब किसी की भी पहचान न थी । फिर-भी इतना सब सर्जन हुआ । भगवान की कृपा से आज तो पहचान हुई है । दो-चार फोन करूं तो मेरी मदद में आ सकते हैं । संसार में तो जिस के बिना नहीं चले उसकी मदद में खड़े रहें । **यहाँ तो मन नाराज हो ऐसी बातें भी करने की आये । मैं किसी की भी शरम में बहता नहीं और बहा भी नहीं । हमारा तो ऐसा स्वभाव बन गया है । आश्रम को बहुत मदद करने वाले को भी कह देना पड़ता है, इससे कईओं के मन नाराज हुए भी देखे हैं । किन्तु उनको जानना चाहिए कि 'मोटा' यहाँ क्यों और किस तरह बरतते हैं ? एवं उनका कहने का क्या हेतु है ? यह बात ठीक से न समझें और दोष दें यह योग्य नहीं है । स्पष्ट न कहूँ तो मैं भी दंभी माना जाऊँगा । सभी के चरणकमल में प्रार्थना भाव से यह निवेदन करता हूँ ।**

दि. ९-१-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

९. यह सब दुःख क्यों ?

भगवान का व्यक्त रूप

यह सकल ब्रह्मांड की दृष्टि से पृथ्वी और उसका समाज एक बिन्दु समान लगता है । ब्रह्मांड को लक्ष में लें तो हमारा कुछ नहीं है । इस तरह से सोचें तो हमारा कुछ नहीं है । इस तरह से सोचें तो अहम् नहीं रहता । **ब्रह्मांड और संसार भगवान का व्यक्त स्वरूप है ।** 'तो फिर उसमें आधि-व्याधि-उपाधि क्यों है ? ऐसा प्रश्न करते मैंने देखा है । सूर्य उदय होता है । प्रकाश और गरमी अपनेआप निकलते रहते हैं। यहाँ रात्रि होती है, वह सूर्य के कारण नहीं होती । सूर्य तो पलपल तेज देता है, फिर भी रात्रि होती है । पृथ्वी की रचना के कारण रात्रि-दिन होते हैं । ऋतुएँ भी उसके कारण होती हैं। दिन, रात्रि या ऋतुएँ सूर्य नहीं करता है ।

भूमिका की आवश्यकता

उसी तरह हम इस संसार से सदा आनंद नहीं ले सकते, भगवान की कृपा का लाभ नहीं ले सकते । क्योंकि हमारी स्थिति द्वंद्वात्मक और गुणात्मक है । जैसे हम बहुत बातें बड़े होकर समझ सकते हैं, बालक की भूमिका में नहीं समझ सकते। इसलिए हमारी गति और स्थिति बदल जाय तो चेतन का प्रकाश और आनंद अपने आप अनुभव हो सकता है ।

प्रथम आवश्यकता

अब हमारी स्थिति कैसे बदले ? पहले तो हमारे में उसके प्रति इच्छा, आशा, उत्कटता, जाग्रत होनी चाहिए । हमें कर्म

करने की इच्छा जाग्रत होती है । इच्छा जितने अनुपात में बलवान तीव्र उतने अनुपात में कर्म में गति प्रगट होती है । किन्तु हम द्वन्द्व और गुण की भूमिका में हैं, इसलिए कर्म भी वैसे ही होते हैं । और चेतन का गुणधर्म आनंद नहीं मिलता। हमें कपड़े को रंग चढ़ाना हो और कपड़ा अगर मैला हो तो पहले मैल निकालना पड़ता है, उसके लिए उसे पहले अच्छी तरह से धोने की आवश्यकता है । हमें यह पहले करना पड़े या तो रंगरेज को वह काम पहला करना पड़े या तो वह कपड़ा रंगा हुआ हो तो उसका रंग पहले निकालना पड़े । **इस जीवन में भगवान का रंग चढ़ाना हो तो हमारी द्वंद्वात्मक-गुणात्मक स्थिति बदलनी पड़ेगी ।** तभी भगवान की स्थिति का परम मांगल्यमय अनुभव कर सकेंगे । अन्यथा वेदना, दुःख मिले उन्हें भोगा कर ! दुःखी हो । शोक कर । किन्तु इन सब में से कुछ राहत मिले, जीवन में प्रसन्नता मिले इसके लिए हमारे शास्त्रों में कहा है कि ऊर्ध्व प्रकार के जीवन की छटपटाहट जाग्रत होनी चाहिए । किन्तु उसमें गति प्रगट हुए बिना कुछ अनुभव नहीं कर सकेंगे । **इस** मार्ग में आगे बढ़ना हो तो जिज्ञासा जाग्रत होनी चाहिए, उसके सिवा कुछ नहीं हो सकता । **ज्ञान की स्थिति अनुभव कर सकें उसका नाम जिज्ञासा ।**

दुःख से जाग्रति

संसारव्यवहार का कर्म करने के लिए तृष्णा-लोलुपता इच्छा जागती है तो उसमें प्रवेश कर सकते हैं । इस तरह भगवान के प्रति जिज्ञासा-छटपटाहट जागे तो उसमें भी प्रवेश कर सकते हैं । संसार में जो आधि-व्याधि आती हैं, वह मनुष्य को किसी न किसी तरह जागृत करने के लिए हैं, किन्तु दुःख

से मनुष्य संमूढ हो जाता है । जो ऐसा होता है, वह कायर पुरुष है । वह इस मार्ग पर एक डग भी आगे नहीं चल सकता। किन्तु जो उससे जाग जाता है, वह समझ सकता है। भक्त लोगों ने दु:ख ही भोगे हैं । उसके कारण भगवान का विचार हो सकता है।

शक्ति प्रगट करने का साधन

दु:ख तो भोगना ही होता है । अगर उसे अच्छी तरह भोगें तो वह पार हो जाता है । ऊबकर दु:ख भोगने से उसकी मात्रा बढ़ती है । अगर शोक, चिंता करके भोगेंगे तो उसी प्रकार के संस्कार पड़ेंगे और ऐसे संस्कार का उदय हो, तब ज्यादा दु:ख भोगना पड़ेगा । हमें दु:ख आता है, वह हमारे अनेक प्रकार के कर्म के कारण आता है ऐसा समझें और इस तरह भावना से उस दु:ख को भोगें । ऐसे समय में जो भगवान को प्रार्थना करता है और होता हो उसका निवेदन करता है, वह दु:ख को शक्ति में परिवर्तित करने का बड़े से बड़ा साधन समझता है ।

दु:ख का उपकार

दु:ख में से तटस्थता प्रगट हो सकती है । दु:ख अनुभव से पक्का होने के लिए बड़ी से बड़ी चीज है, किन्तु दु:ख क्यों होता है, उसका विचार नहीं करते हैं। मनुष्य को संसारव्यवहार में विघ्न आ पड़े, समस्या, मुश्किल आ पड़े तो जिसके प्रति प्रेम जागा हो ऐसे व्यवहार्य व्यक्ति के पास उसके हल के लिए जाता है । क्योंकि उसे गरज लगी होती है । वैसे दु:ख एक बड़ी समस्या है । उसे हल करने की गरज नहीं होती है, किन्तु गरजवान होकर ऐसे जानकार के पास अगर हम जाँय तो

ऊबकर या शोक, चिंता करके दुःख नहीं भोगते । गरजवान व्यक्ति को दुःख के समय लगेगा कि पचासवें भाग का ही वह भोगता है । इसलिए वह उसका हल खोजने के लिए प्रयत्न करेगा। और हल खोजकर भोगेगा । संसार में इस प्रकार दुःख भोगने की कला वह विकसित करता है । उसमें समता, तटस्थता प्रगट होती है । उसके कारण मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् आदि में समत्व प्रगट हों उसके बाद भगवान के साथ योग हुआ ऐसा मानें ।

हमारा सच्चा स्वरूप

सच्चे अर्थ में हम आत्मा के स्वरूप में हैं । अर्थात् कि आत्मा ही हैं । किन्तु मल, विक्षेप और आवरण के कारण प्रकृतिरूप हो गये हैं । इससे शुद्ध नहीं रह सकते । चेतन तो मनुष्य के साथ मनुष्य जैसा, पशुयोनि में पशु जैसा और जलचर के साथ जलचर जैसा तादात्म्य के गुण से होता है । फिर भी सभी से अलग भी है । इस तरह रहने की कला हमें सीखनी है । पुरुष वह आत्मा का स्वरूप है । प्रकृति वह द्वन्द्वमय है। पुरुष सुषुप्त दशा में रहा हुआ है । मनुष्य बहुत कमाया हो, उसे सब प्रकार की सुविधा हो, किन्तु लकवा होने से खाट में पड़ा हो तो गरज के कारण खबर पूछते हैं, उसकी दवा भी करते हैं, किन्तु उसे गिनती में नहीं लेते । मनुष्य के पास इतना सब होते हुए भी पुरुष सुषुप्त दशा में है । ऐसी स्थिति होने के कारण चेतन की गति प्रगट नहीं होती और हमारे जीवन में चेतन के गुणधर्म प्रगट नहीं होते । सूर्य सदा प्रकाशमान है, किन्तु पृथ्वी अपनी गति के कारण रात्रि और दिन का अनुभव करती है । वह जितनी सच्ची हकीकत है, उतनी ही सच्ची

हकीकत हमारी अपनी प्रकृति द्वन्द्व और गुण के कारण चेतन को समझ नहीं पाती, वह है । अतः हम भगवान के गुणधर्म को—प्रकाश को अनुभव नहीं कर पाते ।

दुःख में से सुख

इससे अनुभविओं ने खुद जो अनुभव किया उसे हमारी समक्ष पेश किया है । अब तुम दुःखी होंगे तो अनेकगुना दुःख बताओगे । इसलिए उसे तुम आनंद से भोगो । अन्यथा तुम ज्यादा दुःखी होंगे और फिर कहोगे, 'हे भगवान, तूने यह सब दुःख क्यों दिया ?' **सचमुच तो यह दुःख हम खुद ही पैदा करते हैं, और दोष भगवान को देते हैं ।** अब ज्यादा दुःख पैदा नहीं करना हो तो यह समझने की हकीकत है । **एक कण जितना दुःख को भी प्रेम से सहन करोगे तो वह दुःख गया । उसे प्रेम से भोगने से जो संस्कार चित्त में पड़ते हैं, वे सुख के बीज बोते हैं । शहद में मक्खी की तरह दुःख में जो डूब नहीं जाता, उसे दुःख में से किस तरह सुख पाना उस रीति से जीने की कला आती है ।** दुःख का कोई स्वागत नहीं करेगा । सुख सभी को पसंद है, किन्तु मनुष्य ऐसे बरतता है कि उसे दुःख ही मिले । हमें दुःख मिलते उसका भान जागेगा और समझ का उदय होगा, तब दुःख से उबर जाएँगे ।

दुःख के समय क्या करें ?

अनुभविओं ने देखा कि यह भी मनुष्य से नहीं हो सकेगा। इसलिए उन्होंने उपाय बताया कि भगवान का स्मरण करो । दुःख भले न मिटे, किन्तु दूसरे में दिल लगेगा । दिल दूसरे में लगेगा तो दुःख हलका होगा । दुःख के समय

भावनाभक्ति, स्मरण, वाचन, प्रार्थना में मन को लगाओगे तो मन हलका होगा, उसके संस्कार कम पड़ेंगे । इसलिए दुःख के समय में प्रार्थना करो, आत्मनिवेदन करो । एक भी कर्म उसे समर्पण किये बिना मत करो । उसे समर्पित किये बिना कुछ नहीं कर सकते ।

पूज्यश्री का प्रेम

कोई कहेगा कि मैं जीवन में केवल सत्य का आचरण करूं । किन्तु उससे यह नहीं बनेगा । क्योंकि सत्य-असत्य साथ ही रहते हैं । इसलिए हम असत्य का आचरण भी करेंगे । उस सब से मुक्त होने का उपाय भगवान का स्मरण है । किन्तु उस स्मरण में जब अखंडता प्रगट होती है, तब सच्चा खमीर और तेजस्विता प्रगट होती हैं, उसके बाद जीवन का ऊर्ध्वगमन होता है, जीवन का हार्द खुलने लगता है । सत्त्वगुण में प्रगट होने की प्रक्रिया शुरू होती है और आध्यात्मिक स्थिति में प्रवर्तन होने की स्थिति खुलती जाती है । **दो पैसे कमाने की सूझ मिले, तब भगवान का आभार मानते हैं । उसी तरह दुःख आये, तब भी उपकार मानने जैसा है ।** क्योंकि उससे हमें उत्तम प्रकार का भगवान का स्मरण करते हुए जीने का मौका मिला है। इसलिए दुःख आये, तब ऊबकर, उकताकर भोगोगे नहीं; क्योंकि उससे तो अनेकगुना होगा यह समझें । यह मैं आपको डराने के लिए नहीं कहता हूँ, किन्तु आपको सच्ची समझ पैदा हो जाय और दुःख हजारगुना चिपके नहीं ऐसे भाव से प्रेरित होकर उस प्रकार की समझ प्रेरित करने के लिए प्रभुकृपा से कह रहा हूँ। भड़काने के लिए नहीं कहता; प्रेमभाव से आप में दुःख को सहन करने की कला जाग सके उसके लिए कहता हूँ ।

सत्संग से लाभ

फिर अनुभविओं ने देखा कि मनुष्य यह सब भी नहीं कर सकेगा । दुःख से त्रासित हुआ वह योग भी नहीं कर सकेगा, ज्ञानमार्ग या भक्तिमार्ग भी ग्रहण नहीं कर सकेगा । अतः उन्होंने सरल उपाय बताने करुणा करके कहा कि 'भाई, सत्संग करो' पहले मुझे भी होता था कि तुलसीदासजी ने तो अनेकगुनी अत्युक्ति करके सत्संग की महिमा को गाया है । बाद में मुझे समझ में आया कि उनकी बात बिलकुल सच है । **भगवान का नाम आसानी से ले सकें ऐसा है, फिर भी मनुष्य वह नहीं ले सकता । अतः सत्संग करने से भावना अवश्य कोमल रहेगी। बिना भावना तो संसार भी नहीं निभ सकता । भावना के कारण संसार में एकदूसरे के प्रति प्रेम रह सकता है और सत्संग के कारण भावना कोमल रहा करती है । आप यदि भगवान की भावना में प्रगट हो गये हुए आत्मा का सत्संग करोगे तो उनका प्रकाश तुम्हें स्पर्श किये बिना नहीं रहेगा ।** उसका अनुभव नहीं होता उसका कारण हमारी द्वन्द्वात्मक भूमिका है । जैसे सूर्यनारायण के कारण प्रकाश का स्पर्श होता है वैसे ऐसे महात्माओं के समागम में भी प्रकाश मिलता है ।

सत्पुरुष के सूक्ष्म संस्कार

किसी को ऐसा प्रश्न उठे कि द्वन्द्व की भूमिका के कारण हमें असर न हो तो सत्संग करने का क्या अर्थ ? हम में तीन शरीर हैं । (१) स्थूल शरीर (२) सूक्ष्म शरीर और (३) कारण शरीर । तीसरा शरीर वह कारण शरीर जो भावात्मक है । उसमें आधाररूप से केवल आकाशतत्त्व है । दूसरे प्रकार के शरीर

सूक्ष्म शरीर में आकाशतत्त्व विशेष और उससे हलकी कक्षा में तेजतत्त्व है । स्थूल शरीर का स्थान घर में देहली जैसा है । चेतननिष्ठ जीवों के संस्कार हमारे सूक्ष्म शरीर को स्पर्श करते हैं, किन्तु हमारी भूमिका के कारण उनका उठाव नहीं हो पाता, फिर भी जब शरीर न हो, तब दूसरे जन्म में उन संस्कारों का तुरत ही उदय होता है । इस तरह सत्संग से परिणाम तुरत आ सकता है । सत्संग में तो पास गए कि संस्कार पड़ते हैं। पास जाने का भी दुर्लभ है । तुलसीदास ने तो गाया है कि बिना भाग्य सत्संग मिलना भी कठिन है । भाग्यवान को ही सत्संग मिलता है ।

सत्संग का सद्भाग्य

जब यह समाजोत्थान की प्रवृत्ति शुरू करने में आयी, तब मैंने गुरुमहाराज को कहा : 'मैं माँग तो नहीं करूँगा । दूसरे मनुष्यों के पास से लूं तो कितना ऋण चढ़े ?' उन्होंने कहा 'सब ऋण तेरे सिर पर नहीं, मेरे सिर पर है, क्योंकि तू यह प्रवृत्ति मेरे बदले करता है ।' मैंने कहा: 'आप के वचन में मुझे विश्वास है ।'

चेतननिष्ठ आत्मा के जीवन में किसी तरह से उपयोगी हो गये तो अनेक प्रकार की सहाय मिलने की है । जीवन में कोई भी रीति से उन्नति होने की । संसार में जीवन जीते, अनेक प्रकार की समस्याएँ, कठिनाइयाँ आवें, तब बिजली के चमकारे की तरह हल मिलता है । तथापि हमारे से ऐसा सत्संग नहीं हो पाता; इस सरल में सरल सत्संग की भी मनुष्य को कीमत नहीं है, क्योंकि उन्हें स्वार्थ, गरज नहीं जागे हैं । यह तो कैसा दुर्भाग्य कि उत्तम परिणाम लानेवाला सत्संग भी नहीं कर पाता !

मौनमंदिर की रचना का हार्द

तो क्या मनुष्य दुःखी रहेगा ? तब अनुभविओं ने कहा कि जब तक छटपटाहट न हो, तब तक तो वह वैसा ही रहेगा। इसलिए ऐसी छटपटाहट जागे तो ही गति हो । इसलिए ऐसी छटपटाहट लगाने के लिए भगवान की कृपा से और गुरुमहाराज के हुक्म से इस मौनमंदिर की रचना की है । यहाँ एक-से पंद्रह-सोलह घंटे संस्कार पड़ते हैं । वे संस्कार सूक्ष्म शरीर के चित्त पर पड़ते हैं और वे संस्कार द्वन्द्वादि गुण के नहीं हैं, इसलिए उसकी ऊर्ध्व गति ही कराएँगे । वे संस्कार सीधे सूक्ष्म में ही पड़ेंगे। उसका उदयवर्तमान भी शीघ्र होगा और वह भी अनेकगुना होगा। जैसे दुःख को आह करके, और त्रास पाकर भोगते हैं और वह अनेकगुना बनता है वैसे इन संस्कारों का उदयवर्तमान शीघ्र होते वे अनेकगुनी गति प्रेरित करनेवाले बनेंगे। मौनमंदिरों की रचना इस प्रकार की है कि जीव अपनेआप भगवान का नाम लेते रहता है ।

दि. २३-१-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

१०. सतत अभ्यास रत रहें

सहज अमूल्य भेंट

हमारा जीवन आंतरिक साधनों से चलता है । वे साधन मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् हैं । ये पाँच साधन केवल मनुष्ययोनि में ही हैं । किन्तु वे सहज मिले होने से हमें उनकी कीमत नहीं है । उसी तरह जल, वायु, अग्नि भी सहज है। ये भी कितने कीमती हैं । उसके बिना पूरी सृष्टि में कुछ भी नहीं चलता । कुदरत के पास से यह भेंटरूप में मिला है, किन्तु हमें इसका भान नहीं है । हवा, अग्नि बाहर से भी मिले और वे हमारे शरीर में भी है । शरीर में अग्नि न हो तो हमने जो खाया है, वह नहीं पच सकता । जल, वायु, अग्नि आदि के महत्त्व के लिए हमें सभानता नहीं है, फिर भी वे मिलते ही रहते हैं । उसी के मुताबिक हम चेतन के प्रति सभान होते हुए भी वह हमें नहीं भूलता ।

आंतरिक शक्ति

बुद्धि बहुत आगे बढ़ी है, इससे प्रश्न उठते हैं कि चेतन है या नहीं, भगवान है या नहीं ? किन्तु हमें सोचना चाहिये कि हमारे में कोई गतिवाहक शक्ति रही है । उसके द्वारा पूरा तंत्र चलता है । दिखता है, सुनते हैं, स्पर्श अनुभव करते हैं, हलनचलन करते हैं ऐसी शक्ति के स्वरूप को समझने हमें स्वार्थ लगा नहीं है। कोई कहता है कि चेतन को पाने के लिए बहुत तप करना पड़ता है । अब अगर हम जीवननिर्वाह की प्रवृत्ति में आते विघ्नों को पार कर सकते हैं, ऐसी प्रवृत्ति को कैसे चिपके रहते हैं! क्योंकि उस प्रवृत्ति में हमारा स्वार्थ रहा

दिखता है । फिर जीवननिर्वाह की प्रवृत्ति में सभी सफल होते हैं, ऐसा भी नहीं है, कई हार भी जाते हैं । कई मंद पड़ जाते हैं तो भी सब चिपके रहते हैं । अतः भगवान का अनुभव करने का मार्ग अकेला ही मुश्किल है, ऐसा नहीं है । अगर चेतन के प्रति स्वार्थ लगे तो उसका मुख इस तरफ फिरता है । **स्वार्थ लगाने के लिए पहले जिज्ञासा होनी चाहिये । ब्रह्म की जिज्ञासा जागे बिना उसके प्रति की कोई भी गति नहीं होने वाली । उसके प्रति चोट लगे तो लगन भी लगे ।**

हरिदर्शन के लिए उपक्रम

वह छटपटाहट कैसे लगे ? अर्जुन भगवान को कई तरह से पूछता है । भगवान उसे ज्ञान देते हैं । क्योंकि वह भगवान को बहुत ही प्यारा था । यह समझने जैसा है । हम भगवान के प्यारे न हों, तब तक वे ज्ञान नहीं देते । अब **जिसने भगवान को पाया है, पाना यानी देखा या दर्शन हुआ ऐसा नहीं, किन्तु जिसमें चेतन के गुणधर्म प्रगट हुए हैं, वैसी आत्मा के साथ हमारा परिचय हो** और हम उनके दुलारे हो जाँय तो वे हमें मददरूप होंगे । इसलिए भगवान के साथ संबंध में आने हेतु ऐसे चेतन में जागृत हुए आत्मा के साथ अनुसंधान करो ।

संतों की बात सच्ची कैसे ?

इससे भगवान के प्रतिनिधिरूप ऐसे संतों के पास जायें, तब हमारी समस्या (जीवन-रहस्य की) पर यथायोग्य लक्ष्य रखें। उन्होंने इस संसार में रहकर भगवान को जाना-अनुभव किया है, इससे भगवान के विषयक वे जो हकीकत बताएँ उसे हम सच्ची मानें । कोई पूछते हैं कि वे कहें वह बात सच्ची

है उसका क्या प्रमाण ? मानसशास्त्रीय सिद्धांत है कि झूठ लम्बे समय तक नहीं टिक सकता । अनंत काल से भगवान के विषयक जो भावना समाज में टिकी रही है, वह अगर गलत हो तो नहीं टिक सकती । भगवान के अस्तित्व की हकीकत तो अनादि है । समाज में प्रसरित हुई इस हकीकत को संतों ने जीवन में अनुभव करके प्रमाणित किया है । अतः वह हकीकत सच्ची ही है ऐसा प्रमाणित कर सकते हैं ।

जंगल में मंगल है

कई लोग ऐसा कहते हैं कि 'आप की बात तो बुद्धि से समझें ऐसी है, किन्तु लोग भगवान में नहीं मानते उसका क्या ? ब्रह्मांड तो अनंत और असीम है । उसके आगे हमारी बुद्धि की बिसात नहीं है । किन्तु हमारी पृथ्वी पर अनेक मानवसमाज हैं। वे कोई न कोई दैवीशक्ति में मानते हैं । घोर जंगल में जाँय तो भी राम या कृष्ण को मानने वाले हैं । यह गलत बात नहीं है । क्योंकि पू. ठक्करबापा के साथ भीलों की सेवा करता, तब घोर जंगल में बहुत समय भीलों के बीच रहना हुआ था और उनका परिचय हुआ था । हम ऐसा मानते हैं कि भील लोग सुधरे हुए नहीं हैं, किन्तु वह समझ गलत है । उन लोगों का एक दिन भी भजन-कीर्तन बिना नहीं जाता । **पृथ्वी पर अनेक समाज के लोग (९८ प्रतिशत जितने) भगवान को मानने वाले हैं । बहुत ही कम लोग नहीं मानते । क्योंकि जीवन प्रपंचमय और स्वार्थमय हो गया है । मैं, 'मेरा' और 'मेरा कुटुम्ब' के सिवाय की भावना नहीं रखते । स्वार्थपरायण हो गए होने से ईश्वर के अस्तित्व में नहीं मानते ।** घोर जंगल में रहते लोगों के जीवन में प्रपंच या छल-कपट प्रगट नहीं हुए हैं ।

शहर में बसे हुए हमारे जैसे लोगों का हिस्सा भी बहुत कम है । इसलिए जिसके अस्तित्त्व के विषय में संभावना वाले मानवसमाज में बहुत ही प्रचलित है, ऐसा कोई तत्त्व होना ही चाहिए यह निश्चित है, यह तो बुद्धि से समझ में आये ऐसी बात है ।

श्रद्धा का लक्षण

जैसे प्रत्येक चीज का अनुभव कर सकते हैं, उसी प्रकार चेतन का भी अनुभव कर सकते हैं । उसके लिए श्रद्धा चाहिये। श्रद्धा सच्ची हो तो ज्ञान और भक्ति प्रगट हो सकते हैं । श्रद्धा से उत्साह, साहस, हिंमत, शौर्य प्रगट होते हैं । श्रद्धा को सहस्त्रनयनी कहा है । जिस विषय में श्रद्धा प्रगट होती है, उस पर हम चिपके रहते हैं ।

अभ्यास अनिवार्य

गीता में भगवान ने वैराग्य और अभ्यास की बात कही है । **वैराग्य यानी संसार मिथ्या है, ऐसा मानकर भाग जाना नहीं, किन्तु सकल कर्म करते-करते अनासक्त हों । अनासक्ति यानी निर्ममत्व, निर्मोहता, निर्लोभता, निरंहकारपन आदि का जोड़ । इस स्थिति का नाम वैराग्य ।** ऐसी स्थिति पाने के लिए अभ्यास करना पड़ता है । इसमें अभ्यास यह मनुष्य द्वारा विकसित हो सके ऐसा है । अभ्यास चालू रखें तो नित्यजीवन में सूझबूझ प्रगट होती है । जीवनव्यवहार की प्रवृत्ति में हम अभ्यास से निष्णात हो सकते हैं, इसलिए अभ्यास हो सके ऐसा है ।

अभ्यास का सच्चा हेतु

तत्काल वैराग्य सिद्ध न हो, किन्तु अभ्यास करते-करते सरल होता है । अब जिसे श्रद्धा प्रगट हो चुकी है, उसे शंका-

कुशंका पैदा नहीं होती । किन्तु श्रद्धा सभी में नहीं होती, इससे भगवान ने कहा अभ्यास चालू रखो । सहज श्रद्धा पैदा होनी मुश्किल है । इसलिए अभ्यास चालु रखने से श्रद्धा पैदा हो सकती है। अभ्यास से वस्तु का मर्म पा सकते हैं । **अभि+आस=अभ्यास यानी कि आस-पास बैठना ।** हम किसी के प्रथम परिचय में आयें, तब गुण-अवगुण का पता नहीं लगता, किन्तु परिचय बढ़ने से सब पता लगता है । उसमें हमारा स्वार्थ हो तो हम उसके गुण सोचते हैं, अवगुण नहीं सोचते। **अतः अभ्यास यानी संपर्क में रहते हुए सघन परिचय प्रगट होना ।** मनुष्य के परिचय में आ सकते हैं, किन्तु भगवान तो अदृष्ट हैं । वह हमारे परिचय में नहीं आ सकता तो हम उसके परिचय में कैसे आयें ? इसलिए कहता हूँ कि **भगवान के गुणधर्म की हमारे में वृद्धि करनी है । किन्तु हम जीवदशा में हैं, तब तक हम प्रकृति से छा गये हैं । इसलिए भगवान के गुणधर्म प्रगट हुए हों ऐसे के परिचय में आयें ।**

मैत्री से गुणधर्म की प्राप्ति

अब जिनके गुणधर्म समान हों, तब मैत्री हो । गुणधर्म समान करने के लिए दिल का मेल करें । यों तो सब में भगवान हैं, फिर भी वह अलग है, सब से अनासक्त है । **हम भी संसार में रहते हुए ऐसा अभ्यास करें कि सब में मिले हुए रहने पर भी हृदय से अलग-तटस्थ रहें ।** ऐसा हमारे से सरलता से बने ऐसा नहीं है । इसलिए कहा कि स्मरण करने से भगवान के गुणधर्म प्रगट हो सकते हैं तो प्रश्न होगा कि केवल 'हरिःॐ' या 'राम राम' करने से निर्मोही, निरहंकारी बना जा सकते है ? हाँ। क्योंकि दूसरें गूढ़ साधन हैं । वे चित्तशुद्धि के बिना नहीं हो सकते हैं ।

स्मरण से शांति

इसलिए अगर सुख की छटपटाहट है और कायम टिके ऐसा चाहते हो तो भगवान के स्मरण से आप वह पा सकोगे। गीतामाता कहतीं हैं कि पापी से पापी या दुराचारी भी मेरा स्मरण करे तो उसका उद्धार होता है । सभी यही बात कहते हैं, इसलिए भगवान के स्मरण में लगे रहो । उसके द्वारा जीवन में मदद मिलेगी । जीवन में आती समस्याओं को हल करने में मदद होगी । शब्द के स्मरण से मानसिक स्थिति में परिवर्तन हो सकता है । यह मानसशास्त्र की बात है ।

कर्म के संस्कार की गाढ़ता

पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो कर्म करें उसके संस्कार चित्त पर पड़ते ही हैं । और वे संस्कार जब जागते हैं, तब हम वेगपूर्वक उसीके अनुसार ही बरतते हैं । **इसलिए जो स्मरण नहीं करता, उसकी दौड़ अंधी होती है। उसके गहरे संस्कार उसे उसमें ही खींच ले जाते हैं और उसमें ही डूबोते हैं । जब दूसरा जो भगवान का स्मरण करते कर्म करता है, उसके चित्त पर कर्म के संस्कार उतने गहरे नहीं होते ।** इसलिए जब वे उदित होते हैं । तब ऊपर-ऊपर के होने से बह जाएँगे । उस समय वह उसमें खिंच नहीं जाएगा । भगवान के स्मरण से मूल शक्ति को हम प्रगट करते रहते हैं और नये द्वांद्वात्मक और गुणात्मक संस्कार पड़ते हैं, उसकी गहराई कम होती है। बुद्धि चेतन के सब से नजदीक का करण है । बुद्धि द्वारा स्मरण में एकसापन प्रगट हो तो ऐसी स्थिति प्रगट होती है कि जिसके द्वारा निर्मोह और निर्ममत्व प्रगट कर सकते हैं। बुद्धि इस बात को एकदम स्वीकार नहीं करती है ।

समत्व की प्रक्रिया

भगवान का स्मरण अखंड प्रगट होता है, तब खूब धुन प्रगट होती है। धुन में एक प्रकार का नशा होता है, उसमें एक प्रकार का लय होता है । इसके कारण ज्ञानतंतु में एक प्रकार का समत्व प्रगट होता है । गीता में समत्व को योग कहा है। समत्व के कारण दूसरे विचार अधिक स्पर्श नहीं करते। क्योंकि जिसमें धुन, नशा रहे उसमें ही ध्यान अधिक रहता है और चित्त भी दूसरे में नहीं जाता है । अब यह काम करना या नहीं, यह तुम्हें सोचना है ।

श्रद्धा की बात मैंने की । **यदि श्रद्धा से बुद्धि का विकास न हो तो वह श्रद्धा नहीं है ।** भगवान का भक्त एकसा स्मरण करे तब श्रद्धा प्रगट होती है । और उसे भगवान बुद्धियोग देते हैं। बुद्धियोग वाले चाहे तो ज्यादा कमा सकेगा । इसलिए कहता हूँ कि जीवननिर्वाह का बहाना मत निकालो । जीवननिर्वाह तो भगवान के स्मरण से अधिक अच्छी तरह चला सकते हैं । भगवान की कृपाशक्ति तो एकसी मिलती ही रहती है, किन्तु उसमें शंका करते हैं, इसलिए पंचायत होती है । व्यापार करना हो और कोई धनवान मित्र हो तो उसका सहारा रहता है, किन्तु जिसे भगवान का सहारा हो तो भगवान उसका बराबर चलाता होता है। किन्तु उसमें एक ही शर्त है कि एकसा भगवान का हो जा । केवल जीवननिर्वाह में ही नहीं, किन्तु प्रत्येक प्रवृत्ति में भगवान सहायरूप होंगे । भगवान के सतत स्मरण में हमारा कल्याण है और वह हरएक प्रकार से मदद देने वाला है ।

दि. ६-२-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

११. मौनमंदिर – उत्तम सेवा

दु:ख खटकता नहीं

इस संसार में मनुष्य के रूप में अवतरित हुए हैं और हम मनुष्य होने से—जीवदशा में होने से संसार में सुखदु:ख का अनुभव होता है । अगर सही रीति से सोचें तो हम जन्म लेते हैं, तब से सुख की अवधि अधिक होती है । किन्तु दु:ख उसे पसंद नहीं । सुख पसंद, सुख में रहना पसंद । अच्छा लगे । जीवन जीने का आनंद का सुख मिले । जब दु:ख आये, तब सुख में भंग पड़ने से उसे दु:ख अधिक लगता है । असल के समय में—वेद के समय पहले जीवन के तत्त्वज्ञानिओं ने सोचा कि मनुष्य को सुख अधिक पसंद है । क्योंकि सुख आत्मा का स्वभाव है—लक्षण है और हमारे में आत्मा होने से सुख अधिक पसंद है । क्योंकि आत्मा आनंद और सुखस्वरूप है । हमारी उमर ऐसे कहें की ५० वर्ष की है, तो उस अवधि दरमियान सुख तो अधिक होता है, किन्तु थोड़ा दु:ख आये तो जीव एकदम तंग हो जाता है । दु:ख न आये ऐसा तो होगा ही नहीं। जैसे सुबह में मलत्याग करें वैसे दु:ख भी आएगा। सुखदु:ख तो साथ ही हैं और वे न आये ऐसा नहीं बनेगा । ऐसी मान्यता बनाना कि दु:ख न आये वह अज्ञानमूलक गति है । इसलिए दु:ख आये तब हम तंग हो जाते हैं । ''दु:खी न हो जाँय और क्लेश न पायें' ऐसा वह बोलता है, सोचता है, किन्तु उसकी सचमुच वेदना उसे नहीं होती । जैसे दांत में तिनका फँस जाता है या पैर में काँटा लगे तो उसे निकाले

बिना मनुष्य नहीं रहता, वैसे मनुष्य को सचमुच दुःख, वेदना इत्यादि खटकते नहीं । अगर उसे खटके तो उसका हल करने का प्रयत्न करता है । वह बोलता है सही, किन्तु सात्त्विक प्रयत्न या ऐसा कोई हल करता नहीं ।

महात्मा को भी दुःख

कैसा भी महात्मा होगा किन्तु उसे भी जब तक शरीर है, तब तक दुःख तो आएगा ही । केवल उसे दुःख लगता नहीं। वह समझता है कि दुःख भोगने का है, इसलिए उससे वह दब नहीं जाता ।

दुःख में तैरना

संसार में पैसे कमाने कितना प्रयत्न करना पड़ता है ? उसके लिए उसमें उत्साह होता है और वहाँ उल्टे ऐसा कहते हैं कि 'मुसीबत तो आये ही और उसकी उपाधि या पीड़ा हो तो ही दो पैसे कमा सकते हैं । वैसे दुःख में ऐसा लग जाय तो अवश्य उसका हल हो जाय । इसलिए हम कहते हैं कि संसार में दुःख तो आने का ही । उसे मिथ्या कर सकें ऐसा नहीं है । इसलिए संसार में दुःख, क्लेश, संताप, भय आदि तो रहेंगे ही । उससे हताश न हो जाँय, पक्का रहें, भग्न न हों, ऐसा न हो तो उसके बारे में शोक न करके तनकर रह सकें। उसे निर्मूल कर सकें ऐसा नहीं है तो उसका हल खोजें और उसका उपाय ऐसा खोजें कि ये सब होने पर भी हम शांत और प्रसन्न रह सकें। उसके ऊपर तैरते रह सकें । ऐसा कोई साधन हो सकता है सही ? और उसकी खोज करते, अनुभविओं ने खोज निकाला कि यह सब किसके कारण होता है ? तो मन के कारण । मन को क्यों होता है ?

मन की संलग्नता

मन चार करणों के साथ जुड़ा हुआ है—बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् के साथ । हम जो सब मानतें हैं, चाहते हैं, कल्पना करते हैं, उसके अनुसार न बने तो दु:ख होता है । इससे मन स्वतंत्र नहीं है । मन की जो सब कामनाएँ होती हैं, वे फलित न होने के कारण ऐसा होता है । मन प्राण के साथ जुड़ा हुआ है और ऐसा चाहा हुआ नहीं बनता, इससे मन को दु:ख होता है ।

फिर बुद्धि को ऐसा होता है कि ऐसा किया होता, वैसा किया होता तो अच्छा । इससे बुद्धि सही निर्णय नहीं करती और अहम् उसमें जुड़ता है और उसमें इस तरह गति कराता है । जैसे बिजली हो और उसके लिए इन्जन हो, किन्तु इन्जन चलाने के लिए बिजली का धक्का चाहिए वैसे अहम् तो धक्का होता है । चित्त कुछ काम में नहीं आता, चित्त में संस्कार ही पड़ते हैं और वह प्रत्येक प्रकार के । उसमें सब इकट्ठा होता रहता है । वह तिजोरी है । उसमें सब भरता ही जाता है । वह खाली नहीं होता ।

दु:ख में सुख का अनुभव

महात्मा लोगों ने सोचा कि मन को दु:ख होता है । अगर उसको विकसित करें तो फरक पड़ सकता है । जीवदशा में हमारा सब से बड़ा शत्रु प्राण की शक्ति है । इसलिए उन लोगों ने सोचा कि मन की शुद्धि करने की बात ठीक नहीं है । मन को जो होता है, वह प्राण के कारण होता है । अत: प्राण की शुद्धि करो । इसलिए काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि फीके करें । किन्तु बुद्धि का क्षेत्र मन, चित्त, प्राण, अहम् से निराला है ।

बुद्धि का क्षेत्र स्वतंत्र है । अगर संसार में सोचें तो प्रत्येक के स्वभाव की समझ बुद्धि द्वारा होती है । बुद्धि वह प्रकाश देनेवाली सूक्ष्म इन्द्रिय है । उसके द्वारा संसारव्यवहार की समझ आती है । सब की समझ आती है । किन्तु बुद्धि प्राण के रंग से रंगी हुई है, इससे जैसी आशा, इच्छा, कामना, लोलुपता आदि हो वैसी बुद्धि होती है । अतः दुःख में सुख अनुभव करना हो तो दो इन्द्रियों को ठीक करने की आवश्यकता है और वे हैं प्राण और बुद्धि ।

अगर काम, क्रोध, आशा, तृष्णा आदि एवं मान्यताएँ, पूर्वग्रह आदि फीके करें तो बुद्धि शुद्ध होती है ।

प्राण की शुद्धि

प्राण की शुद्धि कैसे हो ? संसार में सभी कर्म करने हैं। सभी के साथ हिलना-मिलना होगा और घर्षण भी होगा । तो घर्षण का निवारण कर सकते या नहीं ? संसार चलाना, निर्वाह चलाना और घर्षण न हो, उसके बारे में सोच कर खोज की। और उन लोगों ने अनुभव करके जीवन का सार निकाला और करुणा करके सब को बताया कि प्राण की शुद्धि मुख्य और उसके द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है । किन्तु आशा, इच्छा बिना तो जी सकते नहीं । हमारे में सब रचना उसके द्वारा चला करती है । अगर ऐसा न हो तो कर्म चलेगा नहीं । इसलिए बुद्धि कहती है कि आशा, इच्छा आदि तो रहनी चाहिए। किन्तु अनुभवी कहते है कि रहे और हमारा काम चल सके, तो वह कैसे ? संसार में भी भक्त हो गये हैं, सच्चे महात्मा हो गये हैं । वे लोग संसार में अपना कर्म-व्यवहार कर गये हैं ।

निर्ममत्व का परिणाम

भगवान गीता में भी कहते है कि आप कर्म नहीं छोड़ सकते । कर्म आपको छोड़े ऐसा नहीं है और आप कर्म को नहीं छोड़ोगे । तो मनुष्य को शरीर है तो भोजन तो चाहिए ही। इसलिए जीवननिर्वाह के लिए कर्म जरूरी है । तो बुद्धि कहती है कि आशा, कामना, लोलुपता के बिना तो कर्म कैसे संभव है ? किन्तु उसका अनुभविओं ने हल निकाला, भाई ! 'अनासक्त बनो और कर्म करो' । प्रत्येक में शुद्धता रखें, निर्ममत्व रखें। इससे संतोष होता है और दो पैसे मिलें भी सही । और आवश्यकता अनुसार प्रवृत्ति प्रेम से हो सकेगी । उदाहरणार्थ बंगाल में राजा राममोहनराय हो गये, उस समय से हमारे देश में जीवन का उदयकाल का आरंभ हुआ । वे अत्यंत वैभवशाली थे, फिर भी संपूर्ण निरासक्त थे । यह बात १२५ वर्ष पहले की । पश्चात् श्रीमद् राजचंद्र हो गये । वे लाख रूपये कमा गये और पीढ़ी छोड़ दी । ऐसे दो चार भाईओं के नाम भी जानता हूँ कि जो अपना धंधा कुशल भाव से करते हैं ।

जैसे निर्ममत्वपन, शुद्धता तो विकसित करें वैसे बुद्धि शुद्ध होती जाती है, तेजस्वी बनती है और हमारे प्रश्न, समस्याओं का हल बहुत अच्छे ढंग से आ जाता है और कैसे करें तो उसका योग्य हल आएगा उसकी उसे समझ होती जायगी और सामान्य बुद्धि की अपेक्षा विशेष समझ उसमें प्रगट होती है, इससे बुद्धि की मान्यता गलत होती है कि कामना, लोलुपता के बिना कर्म नहीं हो सकते हैं ।

दुःख में प्रसन्नता

इससे दुःख में शांति, प्रसन्नता बनी रहे तो आनंद रहेगा। सकल ब्रह्मांड का मेनिफेस्टेशन menifestation व्यक्तव्य आनंद

के लिए है । आनंद स्वरूप से है । आनंद की झलक यही आत्मा का या जीवन का मुख्य लक्ष्य या हेतु होता है और सुख की अवधि भी लम्बी होती है । सुख यह चिरंजीवी स्वरूप है और ऋषिमुनिओं ने सोचा कि सुख सतत रह सके या नहीं ? तो सुख का अनोखा आनंद भोग सकें और सुख और आनंद अनुभव कर सकें ।

संसार से मुख फेरो

अतः इन दोनों (प्राण और बुद्धि) को फीके करना हो तो आपको संसार से मुख फेरना पड़ेगा । तुम कितनी ही प्रवृत्ति करो, किन्तु मुख फेरे बिना कुछ नहीं होगा । विश्वामित्र जैसा तप हो, तब भी नहीं होगा ।

समृद्धि विलास भोगने का प्रयत्न करो तो भी सुख कायम नहीं टिकेगा । उदाहरणार्थ असुरोंने खूब विलास किया । उसके लिए उन लोगोंने उग्र तप किया और विलास भोगा, किन्तु वह टिका नहीं और चला गया । किन्तु असुरों से ऋषि महान थे। उनके पास सुख सतत रहता था ।

स्वार्थ से संघर्ष

कर्म तो जड़ है, किन्तु उसके कारण अनेक व्यक्तिओं के साथ जुड़े हुए हैं । वह (कर्म) स्वार्थ के कारण करते हैं । अगर केवल कर्म करें तो घर्षण कम रहे, किन्तु स्वार्थ के कारण घर्षण ज्यादा हो और इससे अशांति, वेदना रहेंगे ही ।

ध्येय आवश्यक

इससे ऋषिमुनिओं ने सोचा कि रागद्वेष को फीके करने के लिए ध्येय—कैसा होना चाहिए उसकी निश्चितता—तय होनी

चाहिए । इतना ध्येय निश्चितपन से न प्रगट हो, तब तक कितना ही प्रयत्न करो तो भी ऐसा सवारने का नहीं बनता ।

तो ध्येय निश्चित करने की समझ कैसे हो ? अगर उस समय पर ध्येय के अनुसार गति हो और बरतना हो तो समझें कि ध्येय प्रगट होने लगा है । दिल में लग जाय तभी यह चीज बन जाय । अतः प्राण और बुद्धि अगर सुधर जाँय तो दूसरे करण भी सुधरते हैं । मन वह तो बंधन और मोक्ष का कारण है । जिसे अंतःकरण कहते हैं, अगर उसकी शुद्धि हो जाय तो सब हो जाता है । इससे जीवन का ध्येय बदल जाय। यह सब सुधार सकें तो यह सब संभव है ।

ध्येय के लिए साधन

किन्तु ध्येय एकदम निश्चित न हो तो उसका कुछ साधन करो, उसके प्रति कुछ प्रगति हो ऐसा कुछ करो। तो भगवान का स्मरण उसके लिए बड़ा साधन है । नामस्मरण की गति अखंड हो जाय, तो रागद्वेष सब फीके पड़ेंगे और ध्येय भी निश्चित हो जायगा । और उसके लिए कुछ कहें यह शरमयुक्त लगता है । इसलिए प्रयत्न करो । नदी में जीवट से कूदना ही पड़ेगा । संसार में जो सब होता है, उसमें से भी अगर राहत पानी हो तो भगवान का स्मरण एक उत्तम दवा है। दुःख आदि को दबा न सको, किन्तु प्रार्थना, भजन आदि से उसका पट बदल डालो तो तुम्हें दुःख कम लगेगा । कितनी ही उलझन में हों तो भी भगवान का स्मरण, प्रार्थना, निवेदन, सद्वाचन करो तो उसमें से कुछ राहत रहेगी और ऐसा करो तो सच्ची समझ आएगी।

इससे ध्येय निश्चित हुए बिना रागद्वेष फीके नहीं पड़ते और ध्येय निश्चित करने ऊपर कहा वैसा स्मरण आदि करें ।

सच्ची सेवा - मौनमंदिर

अतः मूल बात पर (आएँ) । सुख स्थायी अनुभव करने के लिए ज्यादा प्रयत्न नहीं करते, सोचते नहीं, इसलिए वह नहीं होता । इसलिए मेरे गुरुमहाराज ने कहा कि कुछ कर ! केवल तू उसे कमरे में डाल दे, इससे उसे अंदर मथन होगा ही और स्मरण भी करेगा । घर में आपके बारे में आप ऐसा नहीं सोच पाओगे, स्मरण भी इतना नहीं होगा । यह कुछ मेरी बात नहीं है, किन्तु सब कहते हैं । घर में इसके लिए सोचता ही नहीं, यहाँ उसे होता ही है । मेरे गुरुमहाराज ने कहा कि यही तेरी सेवा है । मैं तो पहले सेवा करता था, तब भी भगवान का स्मरण करता था और काम करते भी खूब स्मरण किया करता था । उसके साक्षी हैं—परीक्षितभाई, ठक्करबापा आदि उसके जानकार हैं । और जो काम अकेले करता था, उसके लिए अब ५-७ जन हैं । निरहंकारता, निष्कामभाव से काम करेंगे तो सभी काम होगा, छीज कम लगे, इतना ज्यादा काम होता है और थकावट भी नहीं लगती ।

स्वयं के विषय में सोचने

तो भगवान की शरण लें । प्रार्थना करो, सद्वाचन करो, निवेदन करो तो मन को शांति मिलेगी । किन्तु मेरे गुरुमहाराज ने कहा कि इससे भी दिमाग को शांति नहीं मिलती। इसलिए अंदर बंद ही कर देने का मुझे तो कहा । इसलिए जो प्रतिवर्ष अंदर बैठेगा, उसे संस्कार पड़े हैं, वे कहाँ जाएँगे ? बुनियाद बिना घर की चुनाई नहीं होती । वैसे ही जीवन की मूल बुनियाद हमारे जीवन में अंकित हुए संस्कार हैं । अतः जब उनका उदय होगा, तब उसमें ही वे ले जाएँगे । और मनुष्य

स्वयं के विषय में कभी सोचता नहीं है, इसलिए उसे फुरसत देने और समझ उदित हो, इसलिए बंद ही कर देने को कहा और अंदर कितने ही विचार उमड़ें फिर भी भगवान का स्मरण चला करता है । मनुष्य संसार में स्वयं के विषय में सोचेगा नहीं । स्वयं का सोचे नहीं और उसका दर्शन न करे तब तक कैसे पराङ्मुख होगा ?

इसलिए उसे अकेला अंदर रख दें तो अपने आप सोचेगा और ऐसे पवित्र वातावरण में रहने से सूक्ष्म में संस्कार पड़ेंगे।

वर्तमान के प्रचलित जीवन को किसी उत्तम दशा में परिवर्तित करने का यह प्रयोग है । और तनिक-सा रागद्वेष भी किसी का कम हुआ तो इस तरह यह बड़ी से बड़ी सेवा है।

उत्तम सेवा

सेवा तीन प्रकार की: स्थूल, सूक्ष्म और कारण । **भगवान में लीन हो जाँय वह कारण सेवा । मनुष्य के रागद्वेष कम हों, उत्तम प्रकार के संस्कार पड़ते हैं, ऐसे सूक्ष्म में असर पड़े वह सूक्ष्म सेवा; और स्थूल तो बीमार हो उसे दवा, भूखे को अन्न और ऐसी किसी भी प्रकार की आपत्ति में सहायरूप हो सकें वह स्थूल सेवा है ।** इससे रागद्वेष कम न भी हों । इसलिए उत्तम प्रकार की सेवा तो वह है, जिससे मनुष्य के रागद्वेष कम हों । अतः मुझे जो आपकी सेवा करने का मौका दिया है, उसके बदले में मैं आपका ऋणी हूँ । इस जीव में ऐसा कुछ है नहीं । कठिन भी हूँ और स्पष्ट कहते अमुक के दिल दुःखी होते हैं, किन्तु अगर गुणी हों तो

उसे दुःख नहीं होगा । उसका उसमें कल्याण है । और हम चाहें, वैसे कैसे हो ? किन्तु मुझ में ऐसा आकर्षण नहीं हैं, किन्तु भगवान की कृपा है, जिससे अनेकों के साथ संबंघ होने पर यह सब मैं कर सकता हूँ ।

स्वयं का ही दर्शन

मूल बात – अर्थात् ध्येय प्राप्त करने भगवान का स्मरण करो । प्रार्थना, निवेदन करो । प्रार्थना, निवेदन आदि से ध्येय सम्मुख होगा । किन्तु यह भी नहीं होगा, इसलिए गुरुमहाराज ने यह रास्ता दिखाया कि मनुष्य को अकेला छोड़ देने से उसे स्वयं का दर्शन होगा, इससे अपने आप सोचेगा । प्रत्यक्ष सिनेमा की फिल्म जैसे अनुभव हुए हैं और निवेदन किये हैं उसका इसप्रकार प्रत्यक्ष दर्शन होगा ।

मेरे एक बुजुर्ग, जिसका मेरे पर बहुत ऋण है उसे ऐसा तो दर्शन हुआ था कि वह कहता, 'अबे, चूनिया, तेरा जादू बंद कर' तो यह सब प्रत्यक्ष होते ही उसमें से निकल जाता है, प्रायश्चित् करके भगवान के चरण में निवेदन करके । तो उसका कल्याण होता है और ऐसे साधन के सिवाय मनुष्य में जो जो पड़ा है, वह अंकुरित नहीं हो पाएगा ।

मनुष्य के जीवन में ऐसी फुरसत उसे नहीं है । अरे ! कुछ भी गति उसकी हो ऐसी शक्ति ही उसमें नहीं है । इसलिए मेरे गुरुमहाराज ने सही साधन मुझे बताया था । उस समय बिलकुल पैसे नहीं और यह कैसे बने ? तो कहा, 'मेरा तुझे वचन है कि जो कोई तुझे मदद करेगा उसका ऋण तेरे सिर पर नहीं रहेगा । किन्तु मुझे लगता कि जो मुझे मदद करेगा

उसका क्या ? तो कहा कि निश्चिंत हो । तुझे जो कोई मिलेगा और मदद करेगा उसका कल्याण होगा । ऐसा कहा तब मुझे निश्चिंतता हुई ।

और एक समय ऐसा प्रसंग आया । मेरे मित्रों ने आश्रम बनाने के लिए मुझे पैसे इकट्ठे करके दिये थे, वे लौटा दिये थे; पर, बाद में स्पष्ट हुक्म हुआ, तब यह शुरू किया । किन्तु मनुष्य अंदर से बाहर आकर सब भूल जाता है, इसलिए अटक जाता है । किन्तु अगर अभ्यास चालू रखोगे तो गति उत्तम प्रकार की होगी ।

अनेकों इसे देख गये हैं और बखाना है । श्री गंगेश्वरानंदजी भी देख गये हैं और उनको पसंद भी आ गया । सब किसी की अपनी-अपनी रीति अलग होती है । इसलिए यह जो साधन हुआ है, उसका उत्तम रीति से लाभ लें इतनी प्रार्थना है ।

दि. १२-३-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

१२. भेद में अभेद

प्राणीमात्र में श्रेष्ठ—मनुष्य

हमें मनुष्य का जीवन मिला है, उसका सचमुच महत्त्व हमारे दिल में सही रीति से उदित नहीं हुआ है । इस जीवन में अमुक प्रकार का विशिष्ट तत्त्व, विशेषता रही है । यह किस प्रकार की विशिष्टता है, जिसके कारण मनुष्यजीवन दूसरे प्राणिओं से श्रेष्ठ है ? जलचर, पशु, पक्षी उन सब में बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् समान नहीं हैं । सब में मन नहीं है, बुद्धि तो बहुत कम से कम । जलचर, पशु, पक्षी आदि में प्राण है । मनुष्य में पाँच इन्द्रियाँ विशेष रूप से विकसित हुई होने से हम हमारे आत्मा के सत्त्व में खिल सकते हैं—आत्मा के प्रकाश में व्यक्त हो सकते हैं । स्थिर और स्थितप्रज्ञ हो सकें, उसके लिए हमारे पास पाँच करण हैं इसीलिए मनुष्यजीवन सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है ।

बेहोशपन

किन्तु उसका सच्चा मूल्यांकन बुद्धिने स्वीकार नहीं किया है । अगर बुद्धि में वह सही रीति से उदित हो जाय तो हम उसका यथायोग्य उपयोग कर पाएँगे । हाथ पर रोकड़ में अगर पाँच पैसे कम पड़ें तो जरूर पसोपेश पडेंगे, पचास रुपये खो जाँय तो पछतावा भी होता है, किन्तु उससे विशेष कीमत—मनुष्यजीवन खोने की स्थिति में या खोते ही रहते हैं—उसमें चुकाते हैं तो भी उसका हमें भान प्रगट नहीं होता है !

जीवन का मूल्य

जीवन किस तरह खो देते हैं ? अनेक प्रकार के अनावश्यक प्रकार के विचार, रागद्वेष, आघात, प्रत्याघात आदि में मनुष्य जीवन नष्ट कर रहा है । एक मूल्यवान हीरे को नष्ट करते हैं, ऐसा अगर भान जागे तो बहुत अच्छी तरह से उसका जतन करेंगे, किन्तु ऐसा सच्चा भान प्रगट नहीं हुआ है । यह भान कैसे प्रगट होगा ? सभी को भान जाग सकेगा ? तो हम कहते हैं कि नहीं, सभी को ऐसा भान नहीं जागता । सभी तो लीक प्रकार का जीवन ही व्यतीत करेंगे । इससे जीवन को अधिक से अधिक उलझनयुक्त बनाते हैं । फिर कहते हैं कि दुःख आया, कठिनाई आई—इस तरह दुःखी हो जाते हैं । रागद्वेष के खड्डे कैसे कम हो, सब के साथ सद्भाव कैसे प्रगट हो, सुमेल हो ऐसा कोई नहीं करते । किन्तु किस तरह भेद बढ़े ऐसा होते मैं तो देखता हूँ । और उसमें फिर तल्लीन होते रहते हैं । ऐसे ही विचार और वृत्ति में मनुष्य टकराता है !

सुखी होने का रास्ता तो सद्भाव, सुमेल, प्रेम और करुणा विकसित करने में है । किसीने द्वेष किया हो तो भी उसके प्रति सद्भाव बढ़ाएँ, सहनशक्ति बढ़ाएँ, उदारता बढ़ाएँ, यह सब तप है ।

दंभ का परदा

मनुष्यजीवन का सच्चा महत्त्व तो समझें । और उसके ऐसे अमृत का स्वाद चखना हो तो भेद घटाने से ऐसा होगा, भेद बढ़ाने से नहीं । भेद घटाने से सुख मिलता है । बहुत समझयुक्त मनुष्य भी भेद बढ़ाता है । भेद घटे उस तरफ उसकी निगाह जाती ही नहीं । वह बुद्धि से समझता है, किन्तु

उसके अनुसार बरतता नहीं है । फलाना ऐसा बरता ऐसा करके वह भी उसी तरह बरतता है । तो उस प्रकार बरतना क्यों नहीं होता ? क्योंकि वह समझ ठीक पक्की हुई या गहरी उतरी नहीं है । वह समझ ऊपर-ऊपर की या दंभ जैसी है। तो अगर सुखी होना हो तो दंभ के परदे को चीरना पड़ेगा । इससे मनुष्य के सुख के बीच रुकावट डालनेवाला तो बड़े से बड़ा परदा तो दंभ का है और उसे स्वयं ही चीरना पड़ेगा । उसके लिए समझ चाहिये वह कैसे उदित होगी ? स्वयं उदित होगी ।

मर्म समझने मंथन

अच्छे संग से मनुष्यजीवन का मनन-चिंतन होता है । यह देह बहुत महँगा है और उसकी दुर्लभता के विषय में सतत मनन-चिंतन रहा करे और महापुण्य के प्रताप से मिला हुआ यह देह के पीछे रहस्य है, मर्म है, यह समझना चाहिये ।

करणों का शंभुमेला

पाँच करणों—मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् में विकृति हो जाती है । भेद के कारण विकृति होती है । और उकसाहट के कारण वे सभी करण समता की स्थिति में नहीं रहते और उस स्थिति में रागद्वेष जैसे बढ़ाते हैं वैसे उसमें विक्षेपता बढ़ती जाती है । मन कहीं चलता, बुद्धि कहीं चलती, अहम् कैसे बरते—इसमें शंभुमेला हो जाता है । ऐसे तो सभी एक हैं, फिर भी शंभुमेला क्यों होता है ?

समता से प्रसन्नता

संसार में अनेक प्रकार की आशा, इच्छा, तृष्णा, लोलुपता, कामना होती हैं । उसमें थोड़ी-थोड़ी देर में अमुक आशा, इच्छा, कामना उदित होती हैं, इससे उसमें खींच-तान होती है । ऐसे

बेचारा प्राण खींच-तान में पड़ता है और उसके पीछे दूसरे भी खिंचते हैं । उस खींच का जो अनुभव होता है, उससे समतुला को चोट लगती है Balance of Power disturbs. कुदरत ने ऐसी शक्ति अपने आप रखी है और अगर वह न होती तो घर्षण चलता ही रहता । ये सभी आघात-प्रत्याघातों से घर्षण बढ़े, ज्ञानतंतु कमजोर होते हैं और इससे शरीर में रोग आदि होते हैं और दुःखी होते हैं । **इसलिए अगर सुखी होना हो तो समता, तटस्थता आदि विकसित करें तो बहुत सरलता होती है ।** इसके कारण ज्ञानतंतु की समता बनी रहती है । ऐसे लोग समता बनाकर कितना ही दुःख होते हुए भी खूब प्रसन्नता भोगते हैं।

दो उदाहरण

श्रीनारायण के साथ मैं श्रीरमण महर्षि के दर्शन के लिए गया था । शरीर की बहुत दुःखी अवस्था में भी वे प्रसन्न रहते थे । मेरे गुरुमहाराज बालयोगी महाराज के पैर में फोड़ा हुआ था । अंदर कीड़े पड़े थे, वे बाहर गिर जाँय तो उन्हें फिर वापस अंदर रख देते । इससे शरीर को संभालने की वृत्ति अनेकों को होती है, जब गुरुमहाराज तो कहते कि शरीर के प्रति उपेक्षा विकसित करने का एक साधन मुझे अपने-आप मिला हुआ है, उसकी कैसे उपेक्षा करूं ? और उसमें भी वे प्रसन्न रह सकते थे । किन्तु उसका कारण उनके ज्ञानतंतु की प्रबल स्थिति थी और वह समतुला को आभारी थी ।

भेद कैसे कम हों ?

हम ऐसा कैसे कर सकेंगे ? आघात-प्रत्याघात से चिढ़े नहीं, उत्तेजित न हों, समता रखें, इससे मन, बुद्धि, प्राण,

अहम् में विक्षेपता पैदा नहीं होती । इस प्रकार रागद्वेष फीके करो । भेद कम करो । जीवन में मिले सभी के साथ इस तरह बरतने का प्रयास करें । यह कठिन है, किन्तु प्रयत्न करें । संसार में विविधता है । आँख, नाक, कान, मुख आदि प्रत्येक को होते हैं, फिर भी प्रत्येक अलग-अलग होते हैं। इसमें विविधता है । ताड़ देखो । हरएक ताड़ अलग । नीम— हरएक अलग है, ऐसे हरएक अलग-अलग । ऐसे गाय, भैंस, कबूतर आदि एक जात होने पर भी उन प्रत्येक में विविधता होती है । एक भूमिका—परिस्थिति पर हरएक व्यक्ति अलग ढ़ंग से सोचता है । अतः जैसे हरएक अलग एलग ढ़ंग से सोचे तो उसके साथ झगड़ा न करते हुए दूसरे का समझने का प्रयत्न करना चाहिये । रागद्वेष फीके किये बिना आप दूसरे को नहीं समझ सकोगे । अगर भेद कम हों उस ढ़ंग से बरतेंगे तभी दूसरे को समझ सकोगे या समझ सकने की संभावना में आ सकेंगे।

विविधता वही माया

मनुष्यों में मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् एक हैं, किन्तु हरएक की भूमिका, समझ अलग है । इसलिए विविधता तो रहेगी ही । इससे इसके कारण भेद भी प्रगट होंगे । हमारे आचार्यों ने उसका नाम माया रखा । इस विविधता के कारण भेद पड़ा और उसके कारण हम आत्मा में से जीव हो गये । माया यानी भ्रम । जोकि सब दीखता तो बराबर । विविधता किसका लक्षण है ? वह भी एक में से ही प्रगट हुई है, ऐसी समझ अगर जागे तो भेद नहीं होंगे । **दूसरा मेल रखें या न रखें मुझे तो सुमेल रखना है, ऐसा अगर सोचें तो ही मनुष्य सुखी हो सकेगा ।**

सुख के लिए दुःख का उपाय

तब मनुष्य का महत्त्व, श्रेष्ठता उसमें बिना प्रयत्न से मिले हैं कि जो कोई भी योनि में विकसित नहीं हैं । मनुष्य को सुख पसंद है, किन्तु दुःख का उपाय करता नहीं । उसे उसके लिए की ताकत या जिज्ञासा जागी नहीं है । वह चाहता है सही, किन्तु अपनी अनेक प्रकार की वृत्ति, ग्रंथि, समझ में बंधा हुआ है, उसमें से छूट सकता नहीं ।

हम कौन हैं ?

जोकि आत्मा का स्वधर्म पलपल आनंद में प्रगट होने का है । सूर्य में प्रकाश, अग्नि में गरमी वैसे आत्मा में आनंद। यह सब प्रत्येक में सहज है । तो फिर मनुष्य जागता क्यों नहीं ? उसका मूल स्वभाव आनंद है । सूर्य रात्रि में जाता नहीं, प्रकाश भी नहीं जाता, किन्तु परिस्थिति बदलती है । **वैसे हम आत्मा हैं, चेतन हैं, किन्तु जीव हो गये हैं । आनंद - अरे ! आनंद से भी अमृत के सागर हैं । अरे !** ***कर्तुम, अकर्तुम, अन्यथा कर्तुम हैं ।*** **सत और असत में ऐसे ही रहते हैं । हमारी वह स्थिति होने पर भी वर्तमान में अनुभव नहीं करते उसका कारण हमने जो भेद बनाया है वह है । हम आत्मा की स्थिति का भान भूले हुए हैं ।** पलपल आत्मा की स्थिति के भान में रहकर एक-सा प्रवर्तमान होते हैं, वैसे लोग माया में डूब नहीं जाते, किन्तु आत्मा की स्थिति में रहने वाला वैसा जीव निर्विकार रह सकता है । किन्तु हम वैसा अनुभव नहीं कर सकते क्योंकि हम भेद में हैं । हम पलपल में आत्मा का भान नहीं रख पाते । हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और

अहम् हमें सुख और दुःख की परिस्थिति में ले जाते हैं तो वह हमें किस उत्तम स्थिति में ले जाते हैं, वह हमें सोचना चाहिये । एकदूसरे का सहन करें—प्रेम से, सद्‌भाव से, सुमेल रखें, प्रत्येक को सहन करना पड़ता है—किन्तु लाचार होकर या ऊब कर सहन करते हैं—इसलिए उसमें भेद-विकृति बढ़ती है । अतः सहन करना आये—उससे कोई पलायन नहीं तो प्रेम से सहन करने की आदत बनायें, इससे ज्ञानतंतु बहुत मजबूत होंगे ।

भगवान के नामस्मरण का मेल अंतःकरण के साथ

भाई, अनुभव करो, करके देखो और मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् का सन्तुलन बना रहे ऐसी समता से बरतो। सात करोड़ भगवान का नामजप लिखने से मोक्ष हो जाय ऐसा मैंने साधुओं से सुना है । यह बिलकुल गलत बात है । **भगवान के स्मरण का मेल हमारे मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् के साथ जोड़ना पड़ेगा । उसके सिवाय उद्धार नहीं है ।** अगर भगवान का स्मरण करते मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् आदि जैसे बहते होंगे, वैसे बहने दोगे तो सफलता नहीं मिलेगी। इसलिए **भगवान के स्मरण का मन, बुद्धि के साथ संधान हो उसका रास्ता ? मुख्य रास्ता, रागद्वेष फीके किये बिना कोई भूमिका नहीं बनेगी ।**

करोड़ों वर्ष भगवान का नाम भी लिया करो तो भी आपको कोई नहीं तार सकेगा । हम जीवदशा में हैं, इसलिए रागद्वेष में कायम न रहें यह विकसित करें । यह विकसित करना बहुत कठिन है । उसका कोई उपाय सही ? हाँ, भगवान

का स्मरण अगर अखंड हो जाय तो । वह भी कठिन है । तो फिर सरल रास्ता भगवान का स्मरण, प्रार्थना करते हुए अपने आप हमारे मन, बुद्धि, साथ प्रयत्न करते-करते आदत बनायें और वैसा करने ऐक्य, सुमेल और सद्‌भाव से मिले हुए जीवों के साथ बरतें—इससे बहुत सहन करना पड़ेगा, यह विशेष ध्यान में रखें; किन्तु भावना से बरता हुआ आपको सुख की स्थिति में रखेगा यह निश्चित है, यह जानें ।

दि. २०-३-१९६२

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१३. शब्द का आध्यात्मिक विज्ञान

शब्द का आविर्भाव ?

इस पृथ्वी पर जब मनुष्य की हस्ती लाखों वर्ष पहले रही होगी तब, मनुष्य के शरीर के जो विज्ञानशास्त्री हैं, उन लोगों का ऐसा मानना है कि जिसे हम वाणी या शब्द कहते हैं, वह प्रचलित न था । तब मनुष्य इशारों से अपना व्यवहार चलाते थे। ऐसे काल में शब्द का कैसे manifestation व्यक्तव्य=बाहर आना हुआ उसके विषय में बहुत मतभेद है ।

हमारे शास्त्र

यों कहते हैं कि वाणी थी, किन्तु किस प्रकार की, उसका संशोधन नहीं हुआ है । दूसरे कितने ही कहते हैं कि भाषा नहीं थी । हमारी संस्कृति में Prevedic times में लिखने की पद्धति नहीं थी, किन्तु सुनकर, स्मरण में रखकर या कंठस्थ करने की पद्धति थी । **श्रुति यानी सुनकर और स्मृति यानी दिमाग में जिसका स्मरण हुआ करे वह ।** इस तरह हमारे शास्त्र श्रुति और स्मृति की हैसियत से पहचाने जाते हैं ।

हृदय का भाव हृदय में

वेद का ज्ञान श्रुति में है, वह बाद में विकसित होकर स्मृति हुई । अब, जब स्मृति की स्थिति थी, उसके पहले के काल में, जो शब्द का ज्ञान था, वह हृदयस्थ था । जैसे कि मनुष्य को अत्यंत आनंद होता है, तब हृदय का भाव हृदय में रहता है, वैसे ही गहरा आघात होता है, तब मनुष्य नहीं बोल पाता है। तब हम उसे रुलाने का प्रयत्न करते हैं कि जिससे उसकी

मनोवृत्तियों के आवेश में छाती में होनीवाली बेचैनी हलकी होती है । इसका कारण यह है कि शरीर के किसी भी करण पर होने वाली असर अटक जाय ।

वेदकाल पहले आत्मज्ञान

इससे जब ज्ञान की उन्नत स्थिति होती है, तब वाणी का लय हो जाता है । साधना में भी जब साधक भगवान में एकाकार हो जाय, तब वाणी का लय हो जाता है । इससे पहले के काल में ज्ञान नहीं था, लोग मूढ़ थे, ऐसा जो कहलाता है, वैसा हमारे यहाँ नहीं था । क्योंकि हमारे यहाँ वेद प्रगट हुए उसके पहले ऐसी मूढ़ता नहीं हो सकती । वेद के प्रागट्य जैसी - ऐसी ज्ञान की उच्च स्थिति हो, उसके पहले की स्थिति अज्ञानयुक्त कैसे हो सकती है ? पश्चिम के लोग कहते हैं कि लाखों वर्ष पहले मनुष्य बोलते न थे । तब अज्ञानी या मूढ़ थे । किन्तु हमारे यहाँ ऋगवेद आदि प्रगट हुए उसके पहले ऊँचे प्रकारकी भूमिका होनी चाहिये । अन्यथा ऐसी भूमिका के बिना वेद आदि प्रगट नहीं होते । अतः ऐसी स्थिति होने से पहले भूमिका ऊँची होनी ही चाहिये ।

भारत की आदिप्रजा में आत्मज्ञानी

वर्तमान में भी ज्ञान एकदम नहीं हो जाता । ऐसी भूमिका या स्थिति प्रगट हो तभी ज्ञान होता है । इसलिए हम हमारी संस्कृति के अनुसार सोचें तो एक मत के अनुसार हिंद में जो आर्य प्रजा आई वह अमुक जगह निवास करतीं थी और कहाँ से वह आयी उसका निश्चित ठिकाना नहीं है । उस प्रजा में से भी चार-पाँच विभाग होकर अलग-अलग ठिकाने बसे । वे संस्कृति के मूल थे । उसका जो असर फैला उसमें बहुत साम्य

निकलता है या मिलता है । अतः उस पर से अनुमान कर सकते हैं कि जो मूल टोलीवाले थे, उन लोगों के पास अमुक प्रकार ज्ञान था । फिर भी वे लोग निश्चित अनुमान पर नहीं आते कि जिस प्रजा को ज्ञान था, वे मूल में कैसे अज्ञानी या मूर्ख हो सकते हैं ?

जब भक्त को ज्ञान की उन्नत अवस्था प्रगट होती है, तब उसकी वाणी का लय हो जाता है । इसलए तब जो होंगे उनमें से अमुक व्यक्ति ऐसे प्रगट हुये होंगे कि उनमें से कोई साधु बने हों और वे इस तरह ज्ञान की दशा में हों, किन्तु सभी मूढ़ हों, वह संभव नहीं है ।

चेष्टाएं फिर भी शब्द ?

तब समाज का क्या ? उसके विषय में कोई निर्णय नहीं कर सकते । अतः बुद्धि से सोचें तो समझ में आता है कि तब व्यवहार तो चलता ही होगा न ! तो वह इशारों से चलता रहा होगा और ऐसे कोई न कोई शब्द तो निकल पड़ा होगा। हमारी संस्कृति कहती है कि भाषा तो थी और सब से पहला जो शब्द था, वह ॐ निकला था । उसका कोई सबूत नहीं है । किन्तु हमारे लोगों ने सोचा कि शब्द तीन स्थानों से निकलता है—नाभि, कंठ और मूर्धन्य । नाभि और कंठ में से जो निकले उसे कान से सुन सकते हैं और मूर्धन्य में से जो शब्द निकले उसे नहीं सुन सकते । मूर्धन्य यानी सिर का मध्य माग। शब्द का स्फोट होना वह भी सिर के मध्य भाग में से होता है । कान सुन सकें वह भी कान में ऐसे ज्ञानतंतुओं की रचना है कि वे सभी ज्ञानतंतु दिमाग के अंदर जाते हैं और अंदर की रचना को बाहर के आंदोलनों स्पर्श करते हैं और

बाद में अंदर की रचना बाहर के आंदोलनों को पकड़कर शब्द को सुन सकते हैं; और ऐसे शब्द का सिर के मध्य भाग में भी स्थान है ।

तीन केन्द्रों की समता में से 'ॐ'

अतः शब्द के तीन स्थानों के कारण शब्द सुनाई देता होगा ऐसा सभी ने सोचा । और जब मनुष्य भगवान के साथ संबंध में हो, तब ऐसे तो तीनों स्थानों में समता या समानता हो, उस समय जो शब्द निकले होंगे उनका उन्होंने अनुभव किया तो वह उच्चारण 'ॐ' होता है । ऐसे 'ॐ' हमारी संस्कृति का मूल शब्द है । ऐसे प्रत्येक संस्कृति में मूल शब्द की उपासना होती है। मुस्लिमों में अल्लाह एवं ईसाई, जैन धर्म में भी ऐसी उपासना है । अतः नाभि, कंठ, और मूर्धन्य की समानता से जो शब्द निकले उनका संबंध श्वास में होने से और शब्द में सम होने से श्वास में भी सम प्रगट होता है । और ऐसे वह शब्द प्रगट हो, तब श्वास भी सम होता है। इससे ऐसी भावानायुक्त स्थिति में से शब्द निकले, तब श्वास सम प्रगट हो और दोनों—सूर्य चंद्र—नाड़ी में से समान प्रकार का—यानी कि कंपनरहित—एक दूसरे में बिलकुल जोश नहीं ऐसा श्वास बहता है । हमारे शास्त्रकारों ने उसका विचार किया। **श्वास का सम प्रमाण में वहन हो तो उसका क्या असर होगा ? उसका ही नाम प्राणायाम ।** अतः जब प्राणायाम प्रगट हो तब आशा, तृष्णा, आदि फीके पड़ते हैं; साथ-साथ मनोभाव, भाव, भावना भी श्वास के साथ प्रगट होते हैं और इससे शांति, प्रसन्नता लगती है । और हमारा प्राण—आशा, इच्छा, तृष्णा

आदि जिसका function (प्राण का धर्म) है, वह प्राण—जब भाव प्रगट हो, तब स्थिर हो पाता है और वे सब उस समय के लिए शांत हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में जब शब्द निकले और वह फिर भावनायुक्त प्रगट हो, तब ऐसे प्रकार का श्वास चलता है, उसके साथ बुद्धि भी सम प्रकार की होती है और उसके साथ समग्र रूप से हमारे में समता प्रगट होती है ।

'उपासना' यानी ?

उपासना का अर्थ पास में बैठना । लोगों के पास बैठना ? तो कहते हैं नहीं । ब्रह्म या भगवान के पास बैठना। ऐसे हमारे में एक-सी भावना प्रगट हो, इससे उसका नाम उपासना ।

ऐसी भावना प्रगट हो, तब प्रयत्न करना नहीं पड़ता और उस समय मन, बुद्धि, प्राण और अहम् की शुद्धि हुआ करती है । और उसी तरह से जैसे-जैसे भाव उन्नत रूप से प्रगट होता रहता है, तब उसका असर हमारे श्वासोच्छ्वास और फेफड़े पर होकर अपनेआप प्राणायाम का असर करता है और ऐसे शुद्धि होती है ।

शब्द की उपासना

ऐसे शब्द की उपासना से हमारे करणों की विशुद्धि हो सकती है, वह हमने देखा । इससे अच्छा बनने की प्रक्रिया भगवान के नाम की उपासना है, ऐसा मैंने आप को समझाया है। फिर आपको जो नाम प्यारा लगता हो, उसकी उपासना आप ध्येय को सम्मुख रखकर करो तो मन, बुद्धि, प्राण आदि की विशुद्धि हुआ करती है और वैसे-वैसे रागद्वेष फीके पड़ते जाते

हैं । इसके लिए यदि श्रद्धा प्रगट हुई हो तभी बनता है। गीतामाता ने प्रमाण रखा है कि **श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं (४/३९)।** इससे हमें व्यापार करना हो तो पूंजी चाहिए; केवल पूंजी नहीं किन्तु कुशलता, सूझ-बूझ, साहस, हिंमत आदि चाहिए। केवल पूंजी से नहीं चलता । कैसा भी ग्राहक आये उसके साथ प्रेम से सौदा करो तो व्यापार चलता है, फिर वाणी भी मधुर चाहिए।

उसी तरह से मनुष्य को चेतन का अनुभव करना हो तो सरल और सहज पद्धति जो ढूँढ़ निकाली है, वह शब्द की उपासना । यह मैंने आपको बहुत स्पष्टता से समझाया है । स्मरण द्वारा हमारे करण कैसे विशुद्ध हो सकते हैं, वह भी भगवान की कृपा से मैंने समझाया ।

नामस्मरण की रीत

शब्द का उच्चारण वह केवल बोलना ही नहीं, किन्तु उसे बोलने से हमारे करणों की शुद्धि हो उस प्रकार की सभानता से भगवान के स्मरण में जब अखंडता प्रगट हो, तब से सच्ची साधना की शुरुआत होती है । अतः साधना की सच्ची शुरुआत के लिए शब्द की अखंडता की मूल आवश्यकता । इससे शब्द की उपासना यह पहले के समय में भी (मनुष्य) दूसरी साधना कर सके ऐसी स्थिति न थी, तब हमारे ऋषिमुनिओं ने हमारे पर कृपा करके, करुणा करके, हमें यह स्मरण का सरल साधन दिया है ।

संसार में मनुष्य को संताप, दुःख भोगने पड़ते हैं और उसमें शांति प्रगट करने के लिए भगवान का स्मरण, भजन,

प्रार्थना आदि उसके लिए सर्वोत्तम प्रकार के साधन हैं । करके देखो तो पता लगेगा ।

गरज प्रगट करो

मनुष्य को पैसे की आवश्यकता पड़े और उसके पास न हों तो ऋण करके भी लाकर चलाता है । अतः जब गरज होती है, तब बुद्धि जाग्रत हो जाती है । इससे सच्ची गरज प्रगट हो तो बुद्धि उस विषय में काम करती हो जाती है । वैसे ही इस भगवान के नाम में ऐसी गरज प्रगट हो तो काम होता है। इससे शब्द की उपासना करने से काम चलता है ।

हम इस संसारव्यवहार में दुःख, मुठभेड़ भोगते हैं, उलझते हैं । ऐसे समय में शांति पाने का सच्चा साधन हो तो स्मरण है । इसके लिए हमें होता है सही कि शांति हो तो अच्छा । दुःख, कठिनाइयाँ तो संसार में आएँगे ही । और हमारा मन यदि उसमें ही पिरो रहता हो तो उसमें से मन को अलग करने के लिए यदि कोई साधन हो तो भगवान का स्मरण है। भाई, करके तो देखो ।

अनुभविओं की खोज—नामस्मरण की गोली

अमेरिका में आज इतना सारा संघर्षण है और प्रगति हुई है कि वहाँ *ट्रान्क्वीलाईझर्स* की खोज हुई है । उन लोगों ने स्थूल रीति से मन शांत हो, उसके लिए स्थूल दवायें खोजीं और उनका बुरा असर होता है, वह भी खोज निकाला है । संसारव्यवहार के झगड़ों से जो तनाव पैदा होता है, उसके लिए अनुभविओं ने कहा है कि शब्द की उपासना करो । यह हकीकत प्रयोगात्मक है । प्रयोग करके उन लोगों ने कहा है ।

तब मनुष्य ऐसा अपने यहाँ या संसार में नहीं कर सकता है। क्योंकि उसे स्वंय के विषय में सोचने के लिए अवकाश नहीं मिलता । अतः गुरुमहाराज के हुक्म से ऐसा किया है और जो अंदर बैठेगा, उसके द्वारा भगवान का नाम लिया ही जायगा और साथ उसकी वृत्तियाँ भी अधिक उफानाती हैं । किन्तु उसमें से निवृत्त या पराङ्मुख होने की तैयारी नहीं है । क्योंकि अभ्यास चालू नहीं रखता । अमरीका में *ट्रान्क्वीलाईझर्स* की गोली खाते हैं, किन्तु स्थूल उपाय है; वह योग्य नहीं है । इसलिए अगर हम इतने विक्षिप्त हो जाँय तो भगवान को प्रार्थना, निवेदन किया करो। सब कहते हैं कि वह रोटी दे देनेवाला है ? तो हम कहते हैं कि रोटी देनेवाला तो भगवान ही है ।

अहम् कैसे फीका हो ?

हम संसार में कमाते हैं, वह बुद्धि द्वारा न ? तो कहते कि हाँ । तो बुद्धि भगवान की दी हुई है, और चेतन के अत्यंत नजदीक कोई तत्त्व हो तो वह बुद्धि है; और उसके द्वारा कमाते हैं, इससे भगवान ही रोटी देते हैं और हम सुनें, स्पर्श करें या जो कुछ अनुभव करते हैं, वह भगवान की चेतना द्वारा ही । और वह ठीक से समझ में आ जाय तो हमारा अहम् फीका पड़ता है । अहम् फीका हो जाय तो फिर दूसरे करणों की शुद्धि होती है और इससे भी मन भगवान की तरफ मुड़ता है।

उत्तम औषध—शब्द उपासना

शब्द की उपासना यह केवल बोलने-करने की पद्धति नहीं है, किन्तु हृदय को विशुद्ध करने की अमृत संजीवनी है । और क्लेश पाये हुए जीव को शांति प्रगट करने की सर्वोत्तम प्रकार

की दवा है । अनेक प्रकार से तिरस्कृत हुए हों, त्रासित हुए हों, उलझे हुए हों तब प्रार्थना, निवेदन किया करो और फिर देखो तो सही आपको उसमें फर्क लगता है या नहीं । संसार में दुःख, कठिनाई तो आएँगे ही । उसके द्वारा तनाव और संघर्षण भी होंगे ही । तो वैसी स्थिति में भगवान की उपासना सर्वोत्तम दवा है । वह हम सभी समझकर करें ऐसी मेरी आपको प्रार्थना है ।

दि. ३-४-१९६२

॥ हरिःॐ ॥

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन–वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्‌भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हों (२) तब भी भाव बढ़े...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विचार, प्राणयुक्त वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उलटा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहाँ दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव में तल्लीन रहे, प्रभु (२)
दिल में तेरी भक्ति की (२) लहरे उछलें...ॐ शरणचरण.

– मोटा

हरि:ॐ आश्रम में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र.आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram Surat.
January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision Of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Namsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Lotus Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience Of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

॥ હરિઃૐ ॥

माला भी प्रतीक

माला को साधन के रुप में पृथ्वी के अनेक धर्मपंथों ने स्वीकार किया है। मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध इत्यादि धर्मपंथो में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। माला के कारण भावना प्राणवान रखी गई है। इसलिए भावना को पुनर्जीवन देने के लिए और उसे टिकाये रखने के लिये माला जरुरी है। भावना के प्रतीक के रुप में मुसाफरी में भी माला गांधीजी के साथ ही रहती। जिस प्रकार की भूमिका विकसित करनी चाहिए उसे प्रगट करने में भगवान का स्मरण यह उत्तम साधन है। उच्च प्रकार की ऐसी भावना द्वन्द्वातीत–गुणातीत स्थिति–चेतन की दृष्टि भी प्रगट हो सकती है।

– **श्रीमोटा**

'मौनमंदिर का मर्म', प्र. सं., पृ. १६